ओ३म्

जीवन ज्योति

लेखक

स्वामी सत्यप्रकाश

जीवन ज्योति

स्वामी सत्यप्रकाश

विचार प्रकाशन
७/७८ पंजाबी बाग
नई दिल्ली-२६

पूज्य पिता

स्व० श्री लालमन जी आर्य

की ७८वीं जयन्ती पर प्रकाशित—

प्रकाशन

विचार प्रकाशन

□ ७/७८, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-२६
□ १६, बालीगंज सर्कुलर रोड, कलकत्ता-१६

प्रथम संस्करण : अप्रैल १९८९

चैत्र २०४६ वि०

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक :
वैदिक प्रेस
गली नं० १७, कैलाशनगर, दिल्ली-३१
दूरभाष : २२४६६४६

भूमिका

बर्फ की विशाल चोटियों से आवृत पर्वत और उनकी कोख से फूटते झरने, कई एक स्रोत के सम्मिलन से उपजी इठलाती नदियां, रंग बिरंगे फ़ूलों से सजी विस्तृत धरती, सघन वन शिखरों पर फुदकती गाती पक्षियों की टोलियां, नयनों को छलते दूर-दूर तक फैले रेगिस्तान, लहरों की गर्जन से गुंजित अथाह सागर, ये सब रचना है उस परम चित्रकार सृष्टि रचयिता की। कैसी आश्चर्यजनक है यह सृष्टि ! ब्रह्माण्ड में विस्तृत अगणित सूर्य-नक्षत्र, पृथ्वी के छोटे-छोटे धातु कण और उनका गहन रहस्य। किसने बनाया यह जगत् ? किसने द्यौ में सूर्य सा दीप जलाया ?

ये किसने दीप जलाया,
दीप जलाकर किया उजाला, अपना आप छिपाया।
लहर रहा आंखों के आगे,
सागर ये सुषमाता।
किसने रूप दिया जल थल को,
किसने व्योम सजाया।
स्रोत कहां है इस सागर का,
है कितनी गहराई
सागर ने क्यों अपने भीतर
अपना स्रोत छिपाया ?
ये किसने दीप जलाया।

प्रश्न पर प्रश्न है वह कौन है ? और कैसा है ? उस को विचित्र काव्य प्रणेता को वेद (कविर्मनीषी) कवि की उपाधि देता है। उसका शब्दमय काव्य है वेद और अर्थमय काव्य है यह प्रत्यक्षमय जगत्। इस महाकाव्य के इन शब्दमय और अर्थमय दोनों खण्डों की संगति लगाकर अध्येता को अध्ययन

करना चाहिए। (देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति। अथर्ववेद) इस

काव्य पुस्तक के एक पृष्ठ में दिखाई देगा। (यस्येमे हिमवन्तो महित्वा) बर्फीले पहाड़, गर्जते सागर, हरित प्रदेश, और रंग व रसों की अद्भुत चित्रकारी, तो दूसरी ओर लिखा दिखाई देगा—(अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या। अथर्व—३-३०-१) तुम ऐसे आपस में प्यार करो जैसे गऊ अपने नवजात बछड़े से प्यार करती है यह अर्थ सृष्टितल पर बछड़े को चाटती गाय के रूप में प्रत्यक्ष होने लगता है।

वेद का ज्ञान मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए है। ऋषि, महर्षियों ने आर्ष ग्रंथों का सृजन कर वेद ज्ञान की पवित्र ऋचाओं का व्याख्यान कर जन सामान्य पर भारी उपकार किया है। उपनिषद् में श्रवण श्रावण की व्यवस्था देकर श्रद्धा जगायी तो, दर्शन ग्रंथों में ऊहा, तर्क, शक्ति से सत्य को जगाया। मानव धर्म सूत्र द्वारा मानवता के लिए विधानों का परिचय दिया। रामायण-महाभारत के कथा प्रसंगों द्वारा धर्म-अधर्म के फलों का दिग्दर्शन कराया। यह प्राचीन साहित्य हम भारतीयों की गौरवशाली सम्पदा है। परन्तु अमृत है आर्ष ग्रंथों की मधुर धारा। आर्ष ग्रंथों की दिव्य ज्योति किसी सौभाग्यशाली को ही मिलती है। ज्ञानी विद्वानों ने अपने ज्ञान गुणों से सदा ही जन-जन के जीवनों को ज्योति दी है।

प्रस्तुत पुस्तिका में प्रख्यात विज्ञानवेत्ता, पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश जी ने चिन्तन के लिए आठ रश्मियों से युक्त एक ज्योति दी है जो पाठकगणों का उपयुक्त लाभ पहुँचाएगी ऐसा मेरा विश्वास है।

निवेदक :

यशपाल सुधांशु

सहसम्पादक—साप्ताहिक सार्वदेशिक, नई दिल्ली

जीवन-ज्योति

(प्रथम रश्मि)

वन्दना कैसे करूं मैं ?
चित्त चञ्चल वासना से धैर्य कैसे प्रभु धरूं मैं ?
प्यार का लेकर बहाना द्वार तेरे आ पड़ा हूं
तू मना कितना करेगा मैं प्रतीक्षा में खड़ा हूं
जानता हूं मैं बुरा हूं पातकी परित्यक्त हूँ मैं
और कोई है न मेरा एक तेरा भक्त हूँ मैं
भक्त तेरा ही रहूं मैं याद तेरी ही करूं मैं
हे प्रभो बस प्यार तेरा इस कमण्डल में भरूं मैं

मेरे प्यारे बन्धुओ, सब कुछ भूल जाना, पर दो चार बातें ऐसी हैं, जो कभी न भूलना। यह याद रखना कि तुम इस संसार में अपनी मर्जी से नहीं आये हो—तुम से क्या किसी ने पूछा था कि तुम अमुक के घर जाकर पैदा हो ? क्या किसी ने तुम से पूछा था, कि तुम भारत में पैदा होना चाहोगे, या यूरोप और अमरीका में, या अफ्रीका में ? क्या तुम से किसी ने पूछा था कि तुम इस धरती पर पैदा होना चाहोगे, या इस दूर-दूर तक फैले ब्रह्माण्ड में किसी और लोकान्तर में जहाँ शायद तुम्हारे जैसे ही प्राणी बसते हों ? क्या तुम से किसी ने पूछा था, कि तुम आदमी का शरीर पाना चाहते हो, या गाय, घोड़ा, चिड़िया, हिरन, शेर या मच्छर या खटमल का शरीर चाहते हो ? क्या तुम से किसी ने पूछा था कि तुम गरीब घर के तपस्वी होना चाहोगे या धनी कुबेर के घर के विलासी बनोगे ? अतः यह सदा याद

रखना कि तुम अपनी मर्जी से न तो आदमी के चोले में आये, और न किसी ने तुम से पूछा कि किसके घर में तुम पैदा होना चाहते हो ?

माता के गर्भ में जब तुम थे, तब माता का प्राण तुम्हारा प्राण था, माता का भोजन तुम्हारा भोजन था, माता के रुधिर के प्रवाह-चक्र में तुम्हारे शरीर के रुधिर का प्रवाह-चक्र चल रहा था। तुम बेसुध पड़े थे, न तुम साँस लेते थे, और न तुम्हारे हृदय की धड़कन थी। यह मत भूलना कि तुम्हारी माता ने बड़ी तपस्या से तुम्हें अपनी कोख में पाला। वह तुम्हें न जानती थी, न तुम उसे पहचानते थे। वह प्यार और ममता से बाट जोह रही थी कि उसकी कोख में आया है –कौन है, इससे उसे मतलब नहीं। लड़का है या लड़की, इसका भी उसे पता नहीं, पर वह प्रसन्न थी, कि न जाने किसने उसकी कोख में तुम्हें डाला है—आगे चलकर वह तेरी माँ कहलायेगी, और तुम उसके प्यारे शिशु होगे ! कहने को तो वह तुम्हारी माँ है, पर न वह तुम्हें जानती है कि तुम कहां से आये, तुम कौन हो। वह इतना ही जानती है कि वह जैसे तुम्हारी माँ है, उसी तरह तुम्हारा एक पिता भी है। तुम्हारे पिता ने तुम्हारी इस कोख की माँ को प्यार किया, और दोनों के प्यार ने तुम्हें माँ की कोख में लाकर रक्खा। पिता भी नहीं जानता कि तुम कहां से आये, माँ नहीं जानती कि तुम कहां से आये। पर जब आ ही गए तो एक तुम्हारा पिता बना और दूसरा, तुम्हारी माता बनी। इस बात को भूलना मत, जीवन भर याद रखना। शायद एक दिन ऐसा भी आये कि जैसे तुम्हारी माता, माता बनी या तुम्हारा पिता, पिता बना उसी प्रकार तुम भी किसी की या तो माता बनो, या पिता। तुम एक साथ माता और पिता नहीं बन सकते। यह मत भूलना कि शायद तुम माता भी न बनो और पिता भी न बनो, पर यदि बनोगे तो दोनों में से एक ही, और उस दिन तुम भी प्रसन्न होगे, कि अब तुम माता बने हो, या पिता। एक जीवन में शायद तुम बार-बार माता या पिता बनो, और बार-बार तुम्हें यह

शुभ दिन देखने को मिले। पर याद रखना कि तुम से भी कोई नहीं पूछेगा, कि तुम्हारी कोख में बेटा आवे या बेटी, या बेटे के बाप बनो या बेटी के।

देखो, यह भी मत भूलना कि माँ की कोख में से बाहर निकलने पर तुम एक ऐसी दुनिया में आ गए जो तुम्हारे लिए बिल्कुल नयी सी है। तुम इस धरती पर आये—यह धरती न जाने किसने बनाकर तुम्हारे लिए हरी-भरी कर दी। तुमने आँखें खोलीं न जाने किसने तुम्हारी आँखों के खुलने से पहले इस संसार में उजियारा बिखेर रक्खा था—सब अंधेरा ही अंधेरा होता, तो तुम्हारी आँखें देखतीं क्या! तेरी माँ भी किसी दिन नन्हीं बच्ची बन कर इसी तरह दुनिया में आयी थी—उसने भी जब आँखें खोलीं थीं, तो उसे भी उजियारा दिखायी पड़ा था और वह भी इसी प्रकार की धरती पर उतरी थी, जैसे धरती पर तुम्हारा जन्म हुआ। यह धरती और यह उजियारा तेरी माँ की मां के जन्मने पर भी था, और तेरी नानी की नानी के जन्मने पर भी। मत भूलना, कि जब-जब तेरा ऐसा कोई बच्चा धरती पर पैदा हुआ, उसे भी उजियारा मिला—धरती मिली।

तू ने धरती पर आकर सांस ली और यह सांस जब तक रहेगी, धरती पर तू रहेगा, इस बात को भी जीवन भर मत भूलना। सांस तू क्या लेता है, मानो अपने चारों ओर की हवा को अपने भीतर खींच रहा है। पहले दिन भी यही हवा तू ने अपने भीतर खींची थी, और तब से आज तक यह हवा (यह प्राणवायु) तू बराबर लेता आ रहा है। यह भी याद रखना कि यह हवा न तू ने बहायी, न तेरी माँ ने, न तेरे पिता ने! वे भी जब जन्मे थे, उन्होंने भी इसी हवा में सांस ली थी। कभी इस बात को न भूलना। कभी ऐसी जगह मत जाना जहां तुम्हें यह हवा सांस के लिए न मिल पावे। यह हवा न जाने किस ने धरती के ऊपर मीलों दूर तक तुम्हारे प्राणों के चलने के लिए फैला रक्खी है। इस बात को भूलना नहीं।

एक बात और मत भूलना। जब तुम पैदा हुए थे, तुम्हारा छोटा-सा शरीर था, छोटी-सी आंखें, नन्हे से हाथ, बड़े प्यारे छोटे से पैर, और फूल-सा प्यारा तुम्हारा मुखड़ा। जिस ने तुम्हें देखा, तुम्हारे साथ उसने प्यार किया। तुम्हें मुस्कराते देखकर तुम्हारी माता खुश हो उठतीं थी। तुम्हें कोई कष्ट न हो, इसका उसे ध्यान था। रोना तुम्हारी भाषा थी, बोलना तुम जानते न थे। यह मत भूलना कि आज जैसे तुम न थे। तुम उस समय भी थे, पर तब तुम्हारा शरीर नन्हा-सा था—आज भी तुम हो, पर पहले से बहुत कुछ भिन्न। क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे छोटे से शरीर को किस ने धीरे-धीरे बड़ा कर दिया, और कुछ दिन बाद तुम्हारे मुंह में दांत निकल आये ? तुम घुटनों-घुटनों चले, माँ की गोदी में चले, फिर अपने पैरों पर खड़े हुए, और कुछ बरस बाद तुम छलांगें मारते हुए दौड़ने लगे। क्या तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारे इस शरीर को छोटे से बड़ा किया ! तुम को मालूम तो नहीं है, कि तुम को बड़ा कौन करता आया, पर यह याद रखना कि जितनों से तुम परिचित हो, जिन्हें तुम जानते-पहिचानते हो, जिन्हें तुम ने आंखों से देखा है, उन्होंने तुम्हारे शरीर को बढ़ाया नहीं। वे तो स्वयं तुम्हारी तरह दीन-हीन असहाय हैं। अतः याद रखना, कभी मत भूलना कि तुम्हारा जन्मने वाला कोई और था, और हो सकता है, शायद वही हो, जिस ने तुम्हारे शरीर को आज तक पाला-पोषा।

नहीं जानता कौन मुझे धरती पर लाया
नहीं जानता कहाँ किधर से मैं हूँ आया
छिपा कहाँ वह कौन अभी तक जिसने पाला
प्राणों का वह प्राण आंख का वह उजियाला
दिव्य उसी की ज्योति से आलोकित संसार है
अभिवादन उस शक्ति को मेरा बारम्बार है

द्वितीय रश्मि

आम के इस बीज में है
आम की आकृति छिपी गुण भी छिपे रस भी भरा है
आम का रंग भी इसी में लाल पीला या हरा है
बीज का भी बीज प्रभु है
मूल का भी मूल वह है सार का भी सार वह है
चर अचर की चेतना का एक ही आधार वह है
आंख से दीखे न दीखें
आंख की भी आंख वह है देख कैसे तू सकेगा
क्या कभी पहिचान सकता आंख से यदि देख लेगा
देह के इन गोलकों से
दूर हो अति सूक्ष्म हो जो और हो अति ही निकटतम
दीखना उसका न सम्भव जानना सुनना विकटतम
दिव्य अन्त:दृष्टि से ही
दीखता आलोक उसका ज्योति उसकी ज्ञान उसका
और अन्त:श्रोत्र से तू सुन सकेगा गान उसका
झांककर लख ले हृदय में
क्यों न जाता पास उसके प्यार से वह है बुलाता
जब बुलाता वह तुझे संकोच क्या, तू क्यों न जाता

मैं जानता हूं कि आप सब ईश्वर को प्यार करते हैं, अपने को प्रभु का भक्त भी कहते हैं। ईश्वर पर आपको भरोसा है, कभी-कभी आप उसकी याद भी करना चाहते हैं। पर आप में से बहुत से ऐसे भी होंगे, जो ईश्वर को न मानते हों और कुछ तो ऐसे भी होंगे जो ईश्वर के नाम से चिढ़ते हों।

मैं तो यह सदा समझता आया हू, कि आदमी अपने स्वभाव से ईश्वर को प्यार करता है, उस पर उसका भरोसा भी है। पढ़े-लिखे

लोग जब वहकाते हैं, तो हमें भी सन्देह होने लगता है कि ईश्वर नहीं है। तुम माँ की कोख से पैदा हुए हो, और उस माँ से तुम्हें प्यार है। क्या तुम दलील चाहते हो कि कोई यह सिद्ध करे कि यह तुम्हारी माँ है—माँ के प्यार के लिए क्या तुम्हें तर्क करना पड़ता है ? माँ अच्छी हो या बुरी हो, है तो वह अपनी माँ। उसका (माँ) का प्यार तुम ने सदा पाया है। तुम्हें तो याद है, न तुम यह ही कह सकते हो, कि तुम इसी माँ की कोख में थे, और इसी में से निकले हो।

माँ के अस्तित्व का तो फिर भी सबूत है, प्रमाण है जिस नर्स या दायी ने तुम्हारे जन्मते समय सहायता दी थी वह कहेगी कि तुम इसी माँ के बेटे हो। अस्पताल या प्रसूतिगृह में शायद रजिस्टर में यह भी अंकित हो कि अमुक दिन तुम अमुक माँ के पेट से बाहर आये, पर तुम्हारा पिता कौन है—इसका प्रमाण कौन देगा। कौन निश्चयपूर्वक कह सकता है कि तुम जिसे पिता कहते हो और जिसे तुम प्यार भी करते हो, वह ही तुम्हारा पिता है। पर फिर भी माँ तो जानती ही है कि तुम्हारा पिता कौन है। उसकी गवाही पर ही हम सब मान वैठे हैं, कि अमुक व्यक्ति मेरा पिता है। माँ की वात में विश्वास न करो तो दुनिया में कोई भी तुम्हारे पिता को सिद्ध नहीं कर सकता। याद रखना, माँ की गवाही काफी है, दुनिया भर में किसी की गवाही मत लेते फिरना। और यह भी मत कहना कि किसी के पास मेरे पिता का पिता होने का प्रमाण नहीं है, अतः मेरा कोई पिता है कि उनकी माता कौन है, और पिता कौन, फिर भी वे यह तो नहीं कह सकते कि उनका न कोई पिता है, और उनकी न कोई माता।

सब से वड़ा मूर्ख वह है, जो माता को न माने। मैं तो कहूंगा कि वह सब से बड़ा नास्तिक है। आजकल कच्चे पढ़े-लिखे लोगों में ऐसे भी नालायक वच्चे हैं, जो कहते हैं कि मां-बाप को क्या पड़ी थी कि उन्होंने हमें जन्मा, और जीवन की इतनी मुसीबतें उठानी पड़ीं। वे यह भी कहते हैं कि जब उन्होंने हमें जन्मा है, तो वे ही हमें सारी

आयु पाले-पोसें। याद रखना, कोई भी जानवर ऐसी कड़वी बात नहीं कहता, जैसी हमारे यह नौजवान कहते हैं। जानवर भी अपनी माँ से प्यार करते हैं, और थोड़ा सा बड़े होने पर अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं और जीवन के संघर्ष में अपने भरोसे पर अपना जीवन बिताते हैं। यह आदमी ही है जो इतना निकम्मा है और समझता बूझता हुआ भी इतना वेसमझ वनता है!

हाँ, तो मैंने यह कहा कि सब से बड़ा नालायक वह है, जो माँ के अस्तित्व को न माने। इस दुनिया में हर एक की छोटी-छोटी माताएं अलग-अलग हैं, पर हम सब की एक बड़ी माता भी है—तुम्हारी भी वही माता है, और मेरी भी। मेरे बाबा दादा की भी वही माता थी और तुम्हारे नाती-पोतों की भी वही माता रही है। पेड़-पौधों की भी वही माता है यह प्रकृति। तुम इसका कोई भी नाम क्यों न रख लो। आज के वैज्ञानिक इसी को नेचर (Nature) कहते हैं। कोई इसे द्रव्य या मैटर (Matter) कहता है। किसी भी ने यह नहीं देखा कि यह प्रकृति क्या है? पर हम सब जानते हैं कि हमारी धरती इस प्रकृति से, द्रव्य या मैटर से वनी है। प्रकृति रूप वदलकर पेड़-पौधे वन जाती है, यह दूसरे रूप में हवा कहलाती है या पानी, और कभी वदल कर यही सूर्य की रोशनी बन जाती है। यही बिजली है और यही आग है। यही छिपी है आंधी में और यह छिपी है तूफानों में। यही प्रकृति माता रोटी, घी, शक्कर, दूध-दही, फल-फूल के रूप में थाली में आ वैठती है, इसी से हमारा शरीर वना है,—नन्हा-सा छोटा-सा बिन्दु मात्र का शरीर भी जब हम माँ की कोख में थे, और आज का मेरा दो मन का शरीर भी इसी द्रव्य, इसी प्रकृति का रूपान्तर है। प्रकृति वदलकर नाम-रूप बनकर हमारे चारों ओर हमारा पालन-पोषण कर रही है। यह प्रकृति, यह नेचर, यह मैटर, यह द्रव्य हम सब की माता है। कौन मूर्ख है जो इस माता को स्वीकार नहीं करेगा। वह महान् नास्तिक है, जो प्रकृति के अस्तित्व को न माने। यह प्रकृति

भी असली रूप में किसी ने नहीं देखी, और जब तक भिन्न रूपों में (बदले हुए रूपों में जिसे हम विकृति कहते हैं) हमारे सामने नहीं आती हम इसे समझ भी नहीं पाते। उस असली आग को किस ने देखा है, जो कभी रोशनी बनकर सूर्य की किरणों में पहुंचती है, जो कभी बिजली के रूप में अन्तरिक्ष में पहुंचकर चमकने लगती है, और जो कभी धरती पर लकड़ियों में प्रविष्ट होकर रसोईघरों के चूल्हों में ज्वालाओं और अंगारों के रूप में प्रकट होती है। यह आग ही बिजली के तारों में दौड़कर तुम्हारी मशीनें चलाती है, और पेट्रोल के भीतर प्रकट होकर हवाई जहाज तेज उड़ाती है। इसी आग के सम्बन्ध में उपनिषद् में भी लिखा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव।

(आग है तो एक, किन्तु लोकलोकान्तर में प्रविष्ट होकर अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग रूप धारण कर लेती है।)

क्या तुम ने अपनी आंखों से असली आग को देखा है, यह आग अपने को जब तक किसी रूप में प्रकट न करे, कोई इसे नहीं देख सकता। यही आग तुम्हारे शरीर की गरमी है, जिसे तुम नहीं देख सकते। यही आग बिजली के तारों में दौड़ती है, और वह भी आंखों से ओझल है।

जो आग का हाल है, वही वायु का। क्या तुम ने हवा को आंख से देखा है, ठहरी हुई हवा का तो पता भी नहीं चलता। पंखों से जब झलते हो, तब कहते हो कि हाँ, हवा है तो। यही हवा तूफान और आंधी के रूप में अन्तरिक्ष में दौड़ती है। जब दौड़ती है, तो बड़े-बड़े पुराने वृक्ष जड़ से टूट कर गिर जाते हैं! क्या तुम ने हवा से पूछा कि हे हवा। तेरी तसवीर कैसी है, हम तेरा फोटो लेंगे, चित्र बनायेंगे, तेरी मूर्ति घर में रखेंगे। हवा तुम्हारी मूर्खता पर हंसेगी। वह तो यह कहेगी कि जब तुम सांस लेते हो, मैं तुम्हारे पास हूं। जब तक

मैं तुम्हारे शरीर में प्राण के रूप में हूं, तब तक तुम हो। हवा है तो एक, पर शरीर में कभी प्राण कहलाती है, कभी अपान, कभी व्यान, कभी उदान, कभी समान, और यही हवा कभी रुद्र बनती है और कभी मरुत् —जब यह अन्तरिक्ष के तूफानों के रूप में चलती है। वायु एक है, भिन्न-भिन्न रूप धारण करके लोकलोकान्तरों में यह व्याप्त हो रहा है। अग्नि के समान वायु के लिए भी उपनिषद् ने कहा है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं-रूपं प्रतिरूपं बभूव।

मेरी प्रकृति-माता स्वयं में दृष्ट, किन्तु न जाने किस की चेतनता पाकर, न जाने किसके द्वारा अनुप्राणित होकर, न जाने किसका गर्भ धारण करके समस्त चराचर की जननी बन जाती है—वही द्यौ बनी, वही अन्तरिक्ष बनी, वही पृथ्वी बनी, उस ने ही क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा(पंच तत्त्वों) के रूप धारण किये, वही हमारे शरीर की पंचकोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और आनन्दमय कोश) बनी, वही हम जीवों के लिए कारण शरीर बनी और वही कार्य शरीर बनी, वही सूक्ष्म शरीर बनी और वही स्थूल शरीर बनी। उस माँ के विविध नाम रूपों का अध्ययन करके वैज्ञानिकों ने उस ज्ञान का विस्तार किया जिसके फलस्वरूप मनुष्य ने विमान बनाये, आकाशवाणी प्रसारित की, रेलें चलायीं, तरह-तरह के वैभव के पदार्थों का निर्माण किया और शान्ति और युद्ध के साधनों-प्रसाधनों को जुटाया।

प्रकृति-माता के उपकारों को जो नहीं मानता, जो प्रकृति की उपेक्षा करता है, अथवा उसके अस्तित्व को नहीं स्वीकार करता वह मूर्ख और अज्ञानी है, वह नास्तिक है, पर यह कभी मत भूलना कि इस माँ का मातृत्व पिता के पितृत्व से ही विस्फुटित होता है—पिता के बिना तो माँ विधवा है।

प्रकृति जननी हमारी
गोद में तेरे पले हम
शक्ति पा तेरी चले हम
प्राणदा तू आत्मदा है
सब उसी की सम्पदा है
मातु तव उपकार भारी
प्रेममय जननी हमारी
नाम तेरे रूप तेरे
हम सभी अनुरूप तेरे
अग्नि तू ही वायु तू ही
तू चमेली और जूही
कोकिला की कूक प्यारी
गायिका जननी हमारी
जो तुझे विधवा समझता
वह अशिक्षित व्यर्थ बकता
अज पुरुष तू भी अजा है
साथ यह शाश्वत प्रजा है
वह चितेरा, चित्र पट तू
वह नटाता और नट तू

तृतीय रश्मि

पाँच प्रपञ्चों में पागल

पञ्च तत्त्व से देह बनायी पांच प्राण की हलचल
पञ्च इन्द्रियाँ पांच विषय की पञ्च कोश का डेरा
पञ्च वृत्तियों के चक्कर में मेरा भी चकफेरा
पांच क्लेश आकर के भोगे पांच-पांच की माया
पांच अंगुलियों के दो कर ले मानव बनकर आया
पञ्चजन्य की पंचायत में पञ्च पशुक वन प्राणी
जब से आये बोल रहे हम भांति भांति की वाणी
पांच यमों का पांच नियम का पञ्च यज्ञ का यागी
रागी भोगी विषयी अथवा संन्यासी वैरागी
पांच-पांच के पञ्चक से मैं जीवन पार लगाऊं
लोभ क्रोध मद मोह वासना से न कभी घबराऊं

प्रकृति हमारी मां है, उसकी गोद में हम पले हैं, जन्म से लेकर आज तक बढ़ते चले आये हैं। पांच तत्त्व से बनी हम ने देह पायी है। लोग कहते हैं कि यह मिट्टी की बनी है, मिट्टी में मिल जायेगी। मिट्टी का तो घड़ा भी बना है किसी दिन घड़ा टूट जायेगा, लोग इसके टुकड़ों को फेंक देंगे। धरती माता की गोद में यह विलीन हो जायेगा। हमारा शरीर वैसी मिट्टी का तो नहीं बना जिसका घड़ा बना है। जब तक हम इस शरीर में हैं, यह घटता बढ़ता है। शरीर से हम निकले नहीं, कि शरीर सड़ने लगता है। लाश रह जाती है लोग कहते हैं, कि प्राण निकल जाते हैं। निकलते तो हम हैं, पर कहा जाता है कि प्राण निकलते हैं। हमारे निकलने पर वह इंजिन बेकार हो जाता है जो प्राणों को चलाता है। इंजिन यह बन्द हुआ, तो न

तो हमारी आँखें हमारे लिए देखती हैं, कान ऊपर से देखने को तो नहीं हैं, पर ये कान अब सुनते नहीं। नाक सूंघना बन्द कर देती है और जीभ चखना बन्द कर देती है। जिस दिन मैं निकल जाऊंगा, मेरा दो मन का शरीर यों ही पड़ा रह जायेगा। यह करवट भी न ले पायेगा, न बैठ सकेगा, न खड़ा रह सकेगा। अब ले जाकर लकड़ियों की आग में इसे फूंक दें, चाहे कबर खोदकर इसे नीचे दबा दो और ऊपर से मनों पत्थर लाद दो। यह शरीर चूँ भी न करेगा। चाहो तो इस शरीर को पानी में बहा दो, मगर-मच्छ इसे खा जायेंगे। शरीर इस लायक नहीं रहेगा, कि इसे तुम पलंग पर लिटाओ। जो शरीर अब तक अपना था, और जिसकी तुम इतनी सेवा करते थे, जिसे प्यार करते थे, जिसे सुन्दर समझते थे वह हाय, शीघ्र ही इतना भयानक हो गया। तुम्हारी रसीली सी आंखें कहां गयीं, तुम्हारे मीठे से ओठ, तुम्हारे कोमल से गाल सब ठंडे पड़ गए। हृदय की धड़कन भी मिट गयी और खून का चक्कर भी शान्त पड़ गया। अब तक जिसे तुम शरीर कहते थे लोग अब उसे मिट्टी कहते हैं। वही तुम्हारी आँख जिसे तुम एक लाख रुपये में बेचने को तैयार न थे, आज एक पैसे में भी कोई मोल न लेगा।

तुम शरीर से उसी तरह निकले, जैसे कोई मकान छोड़कर बाहर जाता है। घूमघाम कर वह फिर अपने घर में वापस आ जाता है। तुम्हारा मकान भाड़े या किराये पर उठाया जा सकता है, यह शरीर भी तुम्हारा मकान है। पर यह याद रखना कि एक बार तुम इसमें से निकले नहीं, कि अपने शरीर में फिर वापस नहीं आ सकते। किसी पड़ोसी या मित्र को तुम अपना यह मकान भाड़े या किराये पर भी उठा नहीं सकते। तुम इस मकान को किसी और को बेच नहीं सकते। तुम्हारे निकल जाने पर तुम्हारी प्यारी पत्नी भी इस मकान में नहीं घुस सकती। तुम्हारे बेटे भी इसे विरासत में नहीं पा सकते। तुम निकले नहीं कि यह मकान कौड़ी-काम का भी नहीं रह जाएगा।

प्रकृति माता के जो कारीगर तुम्हारे मकान को अब तक कुशलता से वनाते आये थे, और समय-समय पर तुम्हारे रहने के लिए इसकी मरम्मत करते रहे थे, वह अव तुम्हारे निकलने के दूसरे क्षण ही बाद इसे ढाना शुरू कर देंगे। वड़ी तेजी से यह काम करेंगे। तुम्हारे मस्तिष्क की समस्त चेतनायें सवसे पहले लुप्त हो जायेंगी। अव तक तुम जागते थे, कभी सोते थे, और फिर कभी सोकर उठते थे, पर अव तो तुम्हारा शरीर ऐसा सो जायेगा जो फिर कभी न उठेगा। यह याद रखना, यह शरीर तुम्हारे लिए था, केवल तुम्हारे लिए। तुम शरीर न थे, शरीर तुम्हारे लिए था। अव जव तुम्हीं न रहे, तो शरीर भी नहीं रहा। अव न इसमें पांच इन्द्रियां हैं (पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय), न इसमें पांच प्राण हैं (प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान), न इसमें अव पांच कोश हैं (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय)। जब चित्त ही नहीं, चेतना नहीं, तो चित्त की पांचों वृत्तियां (प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति) भी नहीं, अव तुम्हें पांचों क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश) भी कैसे होंगे, अव न तुम से कोई पांच यमों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) का पालन करने को कहेगा, और न कोई पांच नियमों (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) के लिए बाध्य करेगा। जो तुम्हारे शरीर की अवस्था हुई, वह सभी पशुओं के शरीरों की होती है। तुम पांच ग्राम्य पशुओं—गाय, घोड़ा, भेड़, बकरी ओर मनुष्य—में से एक हो। अव कोई तुमसे पंच महायज्ञ (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वलि-वैश्वदेव यज्ञ या अतिथि यज्ञ) करने को भी नहीं कहेगा, और अव तुम्हारा यह शरीर न भोगी है, न रागी, न विषयी, न संन्यासी, न त्यागी, इन पांचों में से कोई हो। जैसे शरीर में तुम किसी दिन घुसे थे, उसी तरह के नन्हे से बिन्दुमात्र होकर तुम निकल जाओगे। एक द्वार से आये, और दूसरे से निकले। जीवन के इन दो द्वारों का नाम

ही तो जन्म और मृत्यु है।

निकली सांस निकल तुम भागे।
अब की तो तुम ऐसा सोये जिससे कभी न जागे।
चार दिनों का ठाठ बाट था चार दिवस की खेती
चार दिनों का ताना-बाना अब तो मिट्टी रेती
चला गया वह रहने वाला रोने वालो रो लो
जाना तुमको भी ऐसे ही बोना जो सो बो लो
देना हो सो दे लो तुम भी चलाचली की माया
छोड़ चले ज्ञानी अभिमानी वही चला जो आया
शूरवीर तो वही भक्त है हंसता हंसता जावे
हलका-फुलका रहे जगत् में जाने पर मुसकावे

चतुर्थ रश्मि

हम सब पथिक लम्बे सफर के
यह जानते हम भी नहीं आये किधर, हम हैं किधर के ?
आना न पहली वार का जाना न पहली बार का है
रहना हमारा इस जगह बस मात्र दिन दो चार का है
दो तीन दिन के ही लिए यह मिला है स्नेह वन्धन
दो तीन दिन की शत्रुता दो तीन दिन का क्रान्ति क्रन्दन
दो तीन दिन की चांदनी है और फिर लम्बा अंधेरा
ले जायेंगे कुछ भी नहीं गिर जायेगा तम्बू व डेरा
पूरी हुई मञ्जिल हमारी मञ्जिलें ऐसी न कितनी
उनसे अधिक है पार करना मञ्जिलें थीं पार जितनी

यह जीवन क्या है—आवागमन का एक चक्र। वस जगत् में न जाने कितने चक्कर हैं—प्रात: के बाद सायं और फिर सायं के वाद प्रात:। दिन के बाद रात और फिर रात के वाद दिन। सूरज उदय होता है, ऊपर चढ़ता नीचे आता है, छिप जाता है, और फिर अगले दिन उदय होता है। यह चक्कर चलता रहता है। आज पूरा चांद निकला है, फिर वह छोटा होता जाता है, इतना छोटा कि अमावस्या के दिन दिखायी नहीं पड़ता, मानो कि वह है नहीं, पर दूज के दिन फिर नखचिह्न के समान आकाश में दिखायी देता है, अब रोज बढ़ने लगता है, और फिर वह पूर्णमासी का चांद बन जाता है। चांद के घटने बढ़ने के साथ समुद्र की लहरों में भी ज्वार और भाटे का चक्कर चलता रहता है। आज जाड़ा आया, जाड़ा गया तो बसन्त ऋतु आयी, वसन्त गयी कि गरमी की ऋतु आयी, गर्मी के वाद वर्षा के वाद फिर शरद् और शरद् के बाद फिर जाड़ा आ गया और फिर

वही चक्कर पड़ा। ये सारे चक्कर हम देख रहे हैं। वे स्पष्ट हमें याद दिला रहे हैं—अभी तू शिशु होकर जन्मा, अब तू बच्चा है, अब तू कुमार हुआ, किशोर हुआ, अब युवा हुआ, थोड़े दिनों का इठलाना था, कि प्रौढ़ हो गया, यह अधेड़ उमर भी गयी—अब बुड्ढा होगा, और मर जायेगा—और फिर ? तू इस चक्कर की दुनिया का प्राणी है—कोई तर्क की आवश्यकता नहीं, दलील क्या करना—तू निश्चय ही मरकर बच्चा बनेगा। कहां किस घर में जायेगा, यह कोई नहीं जानता, पर यह स्पष्ट है, बच्चा बनकर फिर आयेगा। इसमें सन्देह क्या !

लोग मुझ से पूछते हैं—स्वामी जी, मर कर हमारा क्या होगा मैं कहा करता हूं, अपने से पूछ—बच्चा बनने से पहले तेरा क्या था बस वही मरने के बाद होगा। न कोई मरता, तो न कोई बच्चा होता। तुम आज मरोगे, तो दूसरे दिन कहीं पैदा होगे। जिसे पैदा ही नहीं होना, वह मरेगा क्यों ! मैं कहा करता हूं, दो जीवनों के बीच के एक द्वार का नाम जन्म है, और इसी प्रकार दो जीवनों के बीच के दूसरे द्वार का नाम मृत्यु है। जन्म द्वार के द्वारा हम इस जीवन में प्रवेश करते हैं, और मृत्यु द्वार से निकल कर हम दूसरे जीवन में जाते हैं। पर याद रखना, आँख मूंदे हम आते हैं, और आँख मूंदे ह[म] जाते हैं—जन्म के पहले भी मूर्च्छना, घोर सुषुप्ति—माँ के कोख की और मृत्यु के बाद भी नितान्त मूर्च्छना, घोर सुषुप्ति—किसी दूसरी माँ के कोख की। माँ भी नहीं जानती कि कौन कहां से आया है कोई चुपके से आकर उसकी कोख में रख जाता है, और मां इतने ही प्रसन्न है, इतनी सी प्रसन्नता के लिए वह मिन्नतें मनाती है ईश्वर से प्रार्थना करती है कि उसकी कोख में कोई आ जाये चा[हे] कहीं से भी क्यों न आये। जब कोई आ जाता है तो वह फूली न[हीं] समाती—बड़े गर्व से मानो कहती फिरती है कि मेरी भी कोख में को[ई] है। कोई पूछे, कौन है ? कहां का लाड़ला आया है ? न कोई य[ह]

पूछता है, और न मां को इसकी चिन्ता है। उसे यह जानने से क्या कि कहां कौन मरा है, और वह मर कर इसके पेट में आ गया है। कौन मरा कहां गया, जिसके घर जन्मा, इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलेगा। इन प्रश्नों के उत्तर न जानने में ही कुशल है।

न आने जाने वाले को याद, न उसके घरवालों को याद जिस घर में वह मरा था, और न उन लोगों को पता कि कौन कहां से आया है। अगर कहीं मालूम हो जाये तो लड़ाई छिड़ जाये, सम्पत्ति के नये झगड़े पैदा हो जायें, मां अपने बच्चे को प्यार करना बन्द कर दे। धन्यवाद दो उस प्रभु को, जो इस बात का पता ही नहीं देता।

लोग बार-बार पूछते हैं, कि स्वामी जी, अगर हम पिछले जन्म में कहीं थे, तो हमें क्यों नहीं याद। कोई बात तो पिछले जन्म की याद होनी चाहिए और हमें याद नहीं, तो प्रमाण ही क्या—कि हम पिछले जन्म में कहीं थे। मैं अभी कह चुका हूं, कि बड़ा अच्छा है कि आपको पिछले जन्म की याद नहीं, नहीं तो सारी पुरानी ममताओं के झगड़े आरम्भ हो जाते। जिससे तुमने लाख रुपया कर्ज लिया था, वह तुम्हारे सिर पर सवार हो जाता और कर्जा वसूल करना चाहता, जिससे तुम्हारी दुश्मनी थी वह दुश्मनी का बदला लेता, या तुम उससे दुश्मनी का बदला लेते। यह तो बड़ा अच्छा है कि एक जीवन का लेना-देना उसी जीवन में समाप्त हो जाता है। उधर का हिसाब उधर रह जाता है, और नया खाता खुलता है। नयी रिश्तेदारियां बनती हैं—बैंकों में नया हिसाब खुलता है, और फिर तुम्हें फिर से पढ़ना पढ़ता है। क, ख, ग सीखते हो, एक, दो, तीन की गिनती सीखते हो।

पुराने जन्म को क्या, इस जन्म की भी तो बातें याद नहीं रहतीं। आज १९८९ में मैं ८४ वर्ष का हूं। १९२१ में, आज से ६८ वर्ष पहले मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय की मेट्रिकुलेशन परीक्षा दी थी। पर

आज मुझ से कोई पूछे कि स्वामी जी, भूगोल के प्रश्न पत्र में कौन से प्रश्न आये थे ? मैं तो सब कुछ भूल गया हूं। एक भी प्रश्न मुझे याद नहीं है। १९०५ में मैं बिजनौर में पैदा हुआ। बचपन के प्रथम चार वर्ष शायद मैंने उस नगर में बिताये, फिर पिता जी मुझे बाराबंकी ले आये। मुझे अपने पहले चार वर्षों की कोई भी तो बात याद नहीं है। बाद के बचपन की भी एक दो उड़ती सी वे ही बातें याद हैं, जिन्हें मैं हर साल याद कर लेता था। इस जीवन की घटनाओं की जब यह बात है, तो यह स्मरणशक्ति जो तुमने पायी है, उससे पिछले जन्म की याद कैसे रख सकोगे। माँ की कोख में जब तुम थे, तब की भी कोई बात याद नहीं है। गप्पों पर मत विश्वास करो। किसी को भी अपने गर्भ की बात याद नहीं रह सकती, और न बचपन की। न तो पिछले जन्म की बातें याद रखना अच्छा या उपयोगी है, और न यह सम्भव है कि तुम्हें पिछले जन्म की बातें याद रहें।

लोगों की प्रवृत्ति है कि उन्हें गप्पों में जल्दी विश्वास हो जाता है। उन बड़ी गप्पों में से एक गप्प यह है कि जब अभिमन्यु अपनी मां की कोख में था, अर्जुन ने रात के समय मां के सामने वे रहस्य बताये, जिनके आधार पर चक्रव्यूह के अन्दर घुसा जा सकता है। इतने में ही मां सो गयी, उसकी आँखों में झपकी आ गयी, जब अर्जुन यह बता रहा था, कि चक्र-व्यूह में कोई फंस जाये, तो उससे बाहर कैसे निकला जा सकता है। इसका फल यह हुआ, कि अभिमन्यु को चक्र-व्यूह के भीतर प्रवेश करना तो आ गया, पर महाभारत के युद्ध में वह शत्रुओं के चक्र-व्यूह में फंस गया, तो वह बाहर न निकल पाया—वह बेचारा मारा गया। हमारे पुराने ग्रन्थों की कहानियों में जहां बहुत सी गप्पें हैं, उनमें से यह घटना भी बहुत बड़ी गप्प है। गप्पों में मजा तो आता है, पर गप्पों पर विश्वास कर लेना नासमझी है। तुम्हारे भी तो बच्चे होते हैं। जब वे गर्भ में हों, तो उन्हें रेखा-गणित या बीजगणित पढ़ाकर क्यों नहीं देख लेते, यह कोई कल्पना

की तो बात है नहीं, साक्षात् इसके प्रयोग किये जा सकते हैं। याद रक्खो, गर्भ में जब कोई बालक हो, तो उसे इस प्रकार नहीं पढ़ाया जा सकता। पढ़ने और पढ़ाने की क्रिया ही दूसरी है। गप्पों में मत विश्वास करो।

मैंने पुस्तकों में यह भी पढ़ा है कि अमुक ऋषि माँ की कोख में थे तो वहीं से बोलने लगे। एक ऋषि तो मां की कोख में से ही वेदों की ऋचायें बोलने लगा। पुराने समय की गप्पें भी बड़ी मजेदार होती हैं। गप्पों को गप्प मानो, गप्प बनाने वाले ने गप्पों के द्वारा कोई सच्चाई प्रकट की हो. तो बस उतनी सच्चाई को ही स्वीकार करो।

तुमने टेप रिकार्ड देखे होंगे। जब मैं व्याख्यान देता हूं, तो मेरे व्याख्यानों को कभी-कभी लोग टेप-रिकार्ड कर लेते हैं (फीतों पर अंकित कर लेते हैं)—दक्षिण अफ्रीका और पूर्वी अफ्रीका में दिये व्याख्यानों के टेप मेरे पास भी हैं। हमारा तुम्हारा मस्तिष्क भी इसी प्रकार का एक टेप है। यह टेप खोपड़ी के भीतर सुरक्षित है। जब हम कुछ देखते. सुनते. विचारते या कोई काम करते हैं. तो इसकी कुछ बातें मस्तिष्क के टेप पर अंकित हो जाती हैं। पुरानी पड़ने पर ये बात धुंधली हो जाती या मिट भी जाती हैं, और नयी बातें उसी टेप पर फिर अंकित हो जाती हैं। इसी टेप पर पढ़ पढ़कर हम और आप पुरानी बातों की याद करते हैं, और उनसे काम लेते हैं। यह याद रखना कि यह टेप तुम्हारी खोपड़ी के भीतर है—मस्तिष्क का एक अंग है। अगर यह टेप तुम्हारे पास न रहे, या तुम्हारा सम्पर्क इस टेप से अलग हो जाय, तो तुम लिखा-पढ़ा सब भूल जाओगे। बहुत दिनों की पुरानी बात है, संन्यासी बनने से पूर्व की। मेरा संन्यास से पूर्व का एक भाई, उसे पैरोलिसिस का अकस्मात् दौरा हुआ जिसे पक्षाघात कहते हैं। उसके शरीर के कुछ अंग सुन्न पड़ गये। वह एम० एस-सी० पास था। पर बीमारी की इस हालत में

वह क, ख, ग भी भूल गया, और उसे फिर से गिनती (एक दो तीन) पढ़ानी पड़ी। मस्तिष्क में उसके टेप तो था, पर टेप से उसका सम्पर्क टूट गया था। बीमारी से अच्छे होने पर उसकी स्मृति फिर जागृत हुई। अतः याद रक्खो कि यदि टेप नष्ट हो जाये, या टेप से सम्पर्क छूट जाये, तो तुम्हें पुरानी कोई भी बात जो उस टेप पर अंकित की गयी थी, याद नहीं रहेगी।

यह बात भी मुझ से सुन लो और याद रखना, कि तुम्हारा यह टेप, जिस पर सुनी-सुनाई, देखी-भाली, पढ़ी-लिखी और सोची-साची घटनायें अंकित रहती हैं, खोपड़ी के भीतर सुरक्षित है। यह केवल तुम्हारे लिए है, केवल तुम्हीं इसे पढ़ सकते हो, तुम्हारी पत्नी और तुम्हारे बच्चों की इस टेप तक पहुंच नहीं हो सकती, यह टेप केवल तुम्हारा है, केवल तुम्हारा।

तुम जानते हो कि जब कोई मरता है, तो जैसे ही प्राण छूटे, यह टेप फौरन नष्ट भ्रष्ट हो जाता है, एक दो क्षण के भीतर ही इस पर जो कुछ अंकित था मिट जाता है। तुम्हारे शरीर को चिता में भस्म कर दिया गया, या जमीन में गाड़ दिया गया। टेप तो मिट ही चुका था, टेप का सारा मसाला भी भस्म हो गया। यह सदा स्मरण रखना कि जब तुम शरीर छोड़कर बाहर निकलते हो, तुम्हारा यह टेप इसी दुनिया में छूट जाता है। तुम्हें जब नया शरीर मिलेगा, फिर से नया टेप मिलेगा। इसीलिए मैंने कहा कि पुराने जीवन की बातें याद रखना असम्भव है, यह भी दुनिया की बड़ी गप्पों में से एक है। स्मृतियां एक जीवन से दूसरे जीवन में नहीं जातीं, क्योंकि उनके टेप अन्नमय कोश के बने होते हैं, और यह कोश तुम्हारे साथ जाने वाला नहीं। कहानियों और गप्पों में मत पड़ना, कि अमुक अखबार में निकला कि अमुक बालक या अमुक कन्या ने अपने पूर्व जन्म की बातें बतायीं, और जांच करने पर वे ठीक निकलीं। ये सब कहानियां

मजेदार हैं, पर इनसे दुनिया को लाभ होने वाला नहीं। पुनर्जन्म और आवागमन के सिद्धान्त का सच्चा झूठा होना इन गप्पों पर आधारित नहीं है। इस ढकोसले में मत पड़ना।

हम सब जानते हैं कि शरीर क्षण-भंगुर है। जब तक हम इसमें हैं तब तक तो सब कुछ ठीक, पर जैसे ही हम निकले—इस शरीर का कोई मूल्य नहीं। तसवीरें लेते हैं, तो इसी शरीर की, मूर्तियां बनाते हैं, तो इसी ऊपरी ढांचे की। कोई मर जाता है, तो इन्हीं चित्रों और मूर्तियों को देखकर चले जाने वाले की याद करते हैं। बरसों उसके लिए रोते हैं, जो इस शरीर में से चला गया और हमें छोड़ गया। याद रखना, कभी मत भूलना, इस बात को कि जो चला गया, वह तो एक क्षण को भी तुम्हारी याद करेगा नहीं। शरीर से निकला नहीं, कि वह अब न किसी का पत्नी है, न किसी का पति, न वह पुत्री है, न पुत्र, न वह राष्ट्रपति है, न वह प्रधानमन्त्री। जो गया, सो गया—वह तो लौटकर आता नहीं। चाहे कितना भी रोओ, पाठ कराओ, लोगों से आशीर्वाद मांगो, भूलो-भटको, कुछ भी करो, अब तो वह तुम्हारा बनकर नहीं आवेगा। सारा खजाना लुटा दो, फिर से वह तुम्हारे पास आने वाला नहीं। और कहीं अकस्मात् आ भी गया, तुम्हारा ही बेटा-पोता, नाती बनकर, कुत्ता का पिल्ला बनकर, मक्खी-मच्छर बनकर, न तुम उसे पहिचान पाओगे, और न वह तुम्हें पहिचानेगा—चले जाने के नाम पर स्मारक बनवा सकते हो। शाहजहां ने ताजमहल बनवा दिया, पर शाहजहां की पत्नी दूसरा जन्म लेकर अगर आगरा में आ भी जावे, उसे पता भी नहीं चलेगा, कि उसकी यादगार में करोड़ों रुपये की यह इमारत तैयार की गयी है। न स्टैलिन अपनी कबर को पहिचानेगा, और न वेस्टमिनिस्टर दाबे में दबी हुई लाशों वाली आत्मायें यह जानेंगी, कि उनकी मुर्दा लाशें मूर्खों ने पत्थर के नीचे दबाकर रख छोड़ी हैं। इतना पढ़ लिख-कर भी न जाने दुनिया अब क्यों मूर्ख बनी हुई है, कि चित्र बनाती

है, मूर्तियां गढ़ाती है, और अपनी यादगारों को इस रूप में देखना चाहती है।

मैं एक बार नई दिल्ली नगर में न्यू राजेन्द्र नगर की आर्यसमाज में ठहरा। वहां खम्भों-खम्भों पर लिखा हुआ है—अमुक की स्मृति में अमुक ने इतना रुपया दिया, उससे यह बना है, वह बना है। मरने की यादगारें बना कर अपने आर्यसमाज मन्दिर भी मकबरे बन गए हैं। किसी के किसी अच्छे काम की यादगार में तो कुछ नहीं बना। इससे अच्छे तो वे शिलालेख हैं जो लण्डन के मौहल्लों में मैंने देखे—यहां कभी कार्लमार्क्स आकर रहा, यह वह जगह है, जहां बर्नार्डशा रहा, यह वह स्थान है जहां अमुक वैज्ञानिक ने अमुक खोजें कीं। इत्यादि-इत्यादि। मैं किसी बात को बुरा नहीं कहता। जो हाल राजेन्द्र नगर की आर्यसमाज का है, वही हाल दूसरी जगहों का भी है। आदमी को मरों के मकबरे बनाने का शौक है। वह मकबरों से प्रेरणा लेना चाहता है। रामचरितमानस से प्रेरणा नहीं मिल सकती तो क्या तुलसीदास की मूर्ति से प्रेरणा मिलेगी। गान्धी के उपदेश तो बेकार पर गान्धी की समाधि ही मानो सब कुछ है। जवाहरलाल के मस्तिष्क को उसकी रचनाओं में नहीं देख सकते तो क्या जमुना के शान्तिवन में उसे पाओगे। हमारे देश में महात्मा बुद्ध के समय से लोगों ने मकबरों से प्रेरणा पाकर सबक सीखा, नहीं तो ऋषियों की रची उपनिषदों से हमें प्रेरणा मिलती थी, गौतम, कपिल, कणाद और और व्यास की रचनाओं से हम प्रेरणा पाते थे, मनु महाराज की मनुस्मृति हमारे लिए प्रेरणादायक थी, न कि उनकी तस्वीर या मूर्ति। वैदिक युग की परम्परा ही ऐसी थी। न मन्दिर थे, न मस्जिद, न मकबरे, न यादगारें। पर अब तो यादगारों का युग है। मैं किसी को बुरा नहीं कहता, पर इतना अवश्य कहना चाहूंगा, कि जिसकी यादगार में तुम इतना रोते बिलखते हो, वह जाने वाला तो तुम्हारी परवाह भी नहीं करता, वह तुम्हारी ओर देखना भी न चाहेगा। और

वह न तुम्हारे उन मकबरों को देखेगा, या उन शिलालेखों को पढ़ेगा, जो तुमने बड़े खर्चे से उनकी याद में बनवाये या लिखवाये हैं। तुम वेशक मरों के चित्रों पर प्रतिवर्ष मालायें चढ़ाते रहो। तुम्हें इससे सन्तोष और शान्ति मिलती है, तो अवश्य करो। शायद उन मरों हुओं के बहाने, अपना कुछ रुपया अच्छे काम में लगा जाओ, बस इतने से मुझे भी सन्तोष है।

जब कोई अपना सगा-साथी मरता है, हमें याद तो आती ही है। कुछ दिन और रहता, तो अच्छा था। अब साथ बिछुड़ गया, दुःख तो होता ही है। वह चला गया, पर जो कुछ छोड़ गया है, वह हर चीज उसकी याद दिलाती है। उसके बिना घर सूना लगता है। ऐसा गया कि अब फिर वह आने वाला नहीं। फिर भी हमारी कमजोरी है, अगर फिर आ सके, तो एक बार उससे बात कर लू, एक बार प्यार कर लूं, उसे चूम लूँ, उससे चिपक लूं, छोटा सा बच्चा था, तो उसे गोद में खिला लूं,—बे समय चला गया, हम तड़पते हैं कि एक बार फिर वह मिल जाये। पढ़े लिखों की भी यही कहानी है; और गरीब बे पढ़ों की भी यही।

मेरे एक परिचित थे, बड़े बूढ़ों में से थे—मैं तो लड़का था। लिबरल दल के प्रसिद्ध नेता, और प्रयाग के अंग्रेजी दैनिक पत्र के यशस्वी सम्पादक सर सी० वाई० चिन्तामणि। उनके घर में उन्हीं की बच्ची की मृत्यु हो गयी। उन दिनों प्लानचेट (Planchatte) का जमाना था। शरीर से बाहर निकली हुई आत्मायें बुलायी जाती थीं, उनसे बातें पूछी जाती थीं। तीन पैर की एक तिपाई सी होती थी। (इसका एक पैर पेन्सिल का होता है और दो में छोटे से पहिए होते हैं।) मेज पर प्लानचेट रख दीजिये। आत्माओं को बुलाने वाले दो व्यक्ति उस पर हल्के से हाथ रखकर बैठते थे। कहा जाता है कि मरने पर शरीर में से निकली हुई आत्मायें पेन्सिल से सन्देश लिखतीं

हैं। यह खेल अभी समाप्त नहीं हुआ है। मर कर शरीर में से निकली हुई आत्माओं को बुलाने वाले चतुर चालाक व्यक्ति अब भी कहीं-कहीं देखने को मिल जाते हैं। विगत आत्माओं के फोटो लेने के भी बहाने बहुत से चले हैं। सारा भूत प्रेतवाद इसी प्रकार की नासमझी पर आधारित है। मूर्ख तो मूर्ख बनते ही हैं, पढ़े लिखे लोग भी इस चक्कर में फंस जाते हैं।

मेरे एक मित्र थे—प्रो० रामदास गौड़, ख्यातिलब्ध साहित्यिक और रसायनशास्त्र के अध्यापक। पर भूत-प्रेतों में वे विश्वास करने लगे तो प्रेतात्माओं पर लम्बा चौड़ा साहित्य लिख डाला। ऐसी मूर्खताओं पर विश्वास करने वालों की दुनिया में कमी नहीं है। मृत्यु विषय ही ऐसा है, कि कोई आत्मीय मरा नहीं, कि हम बौखला उठते हैं, और फिर तरह-तरह के लोग हमारी कमजोरियों का लाभ उठाकर हमें विश्वास दिलाने लगते हैं, कि शरीर से निकली हुई आत्माओं से हमारी भेंट हो सकती है, और ये आत्मायें विशेष लोकों में रहती हैं—कब्रिस्तान और पीपल के पेड़ तो प्रसिद्ध ही हैं, मानो ये भूत-प्रेतों के डेरे हों।

उन्नीसवीं शती की समाप्ति के निकट से ग्रेट ब्रिटेन में एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसे अध्यात्म विद्या या स्पिरिट्यूएलिज्म (Spiritualism) नाम दिया गया। १८९० में एम्मा० एच० ब्रिटेन (Emma H. Brtiten) ने स्पिरिट्यूलिस्ट्स नेशनल यूनियन के उद्घाटन पर अध्यात्मविद्या वाद के सात सिद्धान्त बताये थे—(१) परमात्मा सब का पिता है, (२) सभी मनुष्य भाई-भाई हैं, (३) आत्माओं में आपस में सम्पर्क स्थापित होता है, और फरिश्तों का मंत्रिमण्डल है (४) मानव आत्मा चिरकाल तक जीवित रहती है (५) प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य का उत्तरदायी है (६) पृथ्वी पर जितने भी काम किए जाते हैं, उनका शुभाशुभ फल भोगना होता है और (८) प्रत्येक मानव आत्मा विकास की ओर उन्मुख है, और अनन्तकाल तक उसके

विकास का यह प्रयास वना रहेगा। अध्यात्म विद्या दर्शनशास्त्र का विषय न बनकर वैज्ञानिक प्रयोगों का विषय वन गयी। विशिष्ट माध्यमों द्वारा आत्मायें बुलायी जाने लगीं। घोर अंधेरे में आनेवाली आत्माओं के फोटो लेने के प्रपञ्च भी रचे गए। विलियम क्रूक्स और कॉनन डॉयल ऐसे वैज्ञानिक भी ऐसे चक्करों में फंस गए। पैरा साइ-कोलोजी (परामनोविज्ञान) नाम से फिर कुछ ऐसे प्रयोग प्रारम्भ हुए हैं। प्रयोग और ऊहापोह करना तो अच्छी बात है। ज्ञान का इससे विकास होता है। पर विद्या और विज्ञान के बहाने से अन्धविश्वास न आ जावे, इससे वचना चाहिए। बड़े-बड़े लोग भी कभी-कभी वड़ी-वड़ी मूर्खताओं की वातें करने लगते हैं।

मेरे मित्र और प्रयाग विश्वविद्यालय के उच्चकोटि के एक अध्या-पक दर्शनशास्त्र के पारंगत विद्वान् थे और रहस्यवाद के आचार्य। उनके कोई सन्तान न थी बुढ़ापे में सन्तान हुई, तो शैशव में ही चल वसी, ऐसी अवस्था पर मस्तिष्क का सन्तुलन ठीक से रखना आसान काम नहीं है। कहना तो आसान है कि जातस्य ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च। जो पैदा हुआ है, निश्चय है, वह मरेगा, और जो मरता है, वह निश्चय पूर्वक फिर जन्म लेगा पर मृत्यु का रहस्य अत्यन्त गहन है, और आत्मीयों का मोह वड़ा असह्य। हम सब मर्त्य प्राणी ऐसे अवसरों पर स्वभावतः उद्विग्न हो उठते हैं। समझते हुए हम भी वेसमझ हो जाते हैं। जो चला गया उनकी मुखाकृति व्यस्त रहने पर चाहे हम भूल भी जायें, किन्तु एकान्त में और कभी-कभी सपनों में हमारे सामने इस रूप में आ जाती है कि हम व्याकुल हो उठते हैं। जो चला गया, वह आने का नहीं। किन्तु कहना आसान है कि जो चला गया, उसके लिए अव शोक क्या !! कहना सरल है, दूसरों को उपदेश देना और भी सरल। एक दूसरे को तो सव सान्त्वना देते हैं, पर कठोर और कुलिश हृदय भी ऐसे अवसरों पर वेचैन हो जाते हैं। इसी का नाम दुनियादारी है, और यह है दुनियादारी।

आने जाने का मेला
किसी किसी ने हंसकर झेला औरों ने रोकर झेला
माया ममता मोह छोड़कर चला गया जाने वाला
चला गया सो चला गया वह लौट न अब आने वाला
बात पुरानी भूल जायेंगे दुनिया से जो हैं जाते
टूट जायेंगे उनके सारे चिर परिचित प्रियतम नाते
कविता में ही रह जावेंगी बिछुड़न की प्यारी बातें
तारों को गिनते गिनते बस बीत जायेंगी ये राते

पञ्चम रश्मि

मार्ग सबका ही अलग इतिहास भी सबका अलग
भिन्न हम हैं भिन्न तुम हो भिन्नता का नाम जग
दो घड़ी के मेल हैं दो दो घड़ी का खेल है
झेलना सबका पृथक् सबका पृथक् यह जेल है
खेत लगता एक सा है किन्तु इसके तृण अलग
पुण्य भी प्राप्तव्य भी दातव्य सब धन-ऋण अलग
जन्म से पहले अलग अब भी अलग फिर भी अलग
तुम उड़ो उड़ते रहो उड़ते चलो मेरे विहग !
है कथा सबकी निराली भिन्न है मार्मिक व्यथा
भिन्न या था तथ्य इव-अपि सर्वथा चिर अन्यथा

यह एक चिरन्तन सत्य है कि हम और आप इस संसार में आये हुए हैं, जो प्रतिक्षण परिवर्तनशील है—इसे ही जगत्यां-जगत् कहा गया है। एक अनोखी सत्ता का इस पर शासन है, और उसके शासन की प्रतीति जग के कण-कण में और प्रत्येक स्पन्दन में है—इसीलिए सम्भवतया उस अद्भुत परमप्रेरक सत्ता को हमने ईशावास्यम् इन शब्दों के माध्यम से जाना है। इतनी बड़ी सृष्टि किसके लिए, जिसने बनायी उसके लिए नहीं, जिस जड़ माता प्रकृति के गर्भ में यह सृष्टि विस्फुरित हुई उस जगज्जननी के लिए भी नहीं। फिर है किसके लिए। आचार्य कपिल कहते हैं—संहत-परार्थत्वात्, यह विशाल और विराट् रचना हमारे और आपके लिए ही तो है। ईश्वर अनादि, और हमारे आपके लिए बनायी गयी यह सृष्टि भी प्रवाह से अनादि। सृष्टि सतत-बहते हुए नद के समान है, जो बहता आया है, बह रहा है, बहता रहेगा, और हमारा और आपका आना जाना भी लगा

रहेगा।

न जाने इस अद्‌भुत संसार में हम कब से आने-जाने लगे हैं— कौन कह सकता है—इस रहस्य को। लगता है कि यह आना-जाना कभी बन्द न होगा। जब हम इस सृष्टि में आते हैं, उसे हम जन्म कहने लगते हैं। जब शरीर छोड़कर निकलने लगते हैं, तो इसी द्वार को मृत्यु कहते हैं। जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि का नाम हमने जीवन रख छोड़ा है। हम अकेले नहीं हैं—किसी और के माध्यम से आये थे—उसका नाम हमने कभी पिता रक्खा, किसी को माता-पिता कहा। सम्भवतया ऐसा लगता है कि हमारे प्रकट होने के लिए पिता की अनिवार्यता है, और माता की। दोनों हों तो बच्चा आवे। एक ही माता-पिता से दो-तीन बच्चे भी आते हैं, ८-१० भी आ सकते हैं, और कुछ प्राणियों में एक ही माता-पिता से सैकड़ों-हजारों आ जाते हैं। माता पिता और सन्तति, अनेक माता-पिता, असंख्य संतति अनेक भिन्न-भिन्न जातियां या योनियां, और विलक्षण अनेकधा सन्ततियां। संसार इन सन्ततियों से भरा-हुआ है।

आज मेरी छोटी-सी धरती पर ही कितनी योनियां हैं, और असंख्य सन्तति हैं। इन सन्ततियों के वर्गीकरण का प्रयत्न वैज्ञानिकों ने किया है। एक वर्ग, अनेक उपवर्ग, फिर अनेकानेक प्रोपवर्ग—इस वर्गीकरण का अन्त नहीं। लगता है, कि प्रत्येक जीव के लिए अलग-अलग एक शरीर मिलता है—एक शरीर में एक ही अभिमानी जीव रह सकता है, जिसके ज्ञान, कर्म, भोग के लिए अलग-अलग एक शरीर होना चाहिए। भौतिक पिण्ड हों, उसमें संवेदना वाली इन्द्रियां हों, चेष्टाओं के निमित्त प्राण हों, प्राणों पर मन के माध्यम से जीव या आत्मा का शासन हो। एक शरीर पर एक ही अभिमानी जीव का शासन होता है।

जीव की यह जीवन यात्रा अतीत काल से चली आ रही है। कब

आरम्भ हुई थी और कब यह यात्रा समाप्त होगी इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे सकता। आदि और अन्त के प्रश्न उठाना ही हंसी और नासमझी की बात समझी जायेगी। यह कल्पना भी मूर्खता की है, कि मृत्यु के साथ हमारा अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। मृत्यु के समय जीव के अस्तित्व की समाप्ति उतनी ही मूर्खता की उक्ति है, जितनी कि यह कि हम जन्म के समय हम नास्तित्व अथवा असत् से प्रकट हो गये। ऐसे उत्तर किसी भी समस्या का समाधान नहीं करते। यह समस्या को अधिक जटिल और हास्यास्पद बना देते हैं।

हम सदा से हैं, सदा रहेंगे, सदा शरीर में आते जाते रहेंगे। शरीर में न रहना—इसका नाम ही मुक्ति या मोक्ष है। हम हों तो, यह शरीर में न हों (ज्ञान-भोग और कर्म की कोई चेष्टा हम में न हो, किन्तु हमारा नितान्त-अभाव न हो)—ऐसी अवस्था का नाम ही तो मुक्ति या मोक्ष रखा गया है। मुक्ति की प्राप्ति जीवन का परम उद्देश्य कहा जाता है। मुक्ति में आज मैं (स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती) नहीं हूं। सम्भव है कुछ जीवनों के आवागमन के माध्यम से मैं मुक्ति प्राप्त कर लूं—तब मेरी मुक्ति का प्रारम्भ होगा। जिसका प्रारम्भ होता है, उसका कभी न कभी अन्त होगा ही—यह एक तर्कसंगत सिद्धान्त माना जाता है। तो फिर यदि मुक्ति का कभी आरम्भ होगा, तो उसका अन्त भी होना निश्चय है। अर्थात् "मुक्ति" नामक अवस्था की मुझे प्राप्ति हो भी गयी, तो उससे मुझे फिर वापस भी आना पड़ेगा (इसी को मुक्ति से पुनरावर्त्तन कहते हैं। मैं चाहूं या न चाहूं, अर्जित मुक्ति से मुझे लौटना ही पड़ेगा। मैं कतिपय दार्शनिकों के उन हेत्वाभास से युक्त तर्कों में उलझना नही चाहता, जो मुक्ति का अर्जन होना ही नहीं स्वीकार करते।)

मुक्ति प्राप्त करने के लिए भी कुछ योग्यतायें होनी चाहिए। कहा जाता है कि प्रभु-प्रसाद के रूप में मुक्ति मिलती है—यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:—जिसे प्रभु प्यार से चुन लेता है, उसे ही वह इस परम पुर-

स्कार के लिए चुन लेता है। पर मेरा प्रभु मनमौजी तानाशाह तो नहीं होगा। कुछ सोच-समझकर ही वह चुनता होगा।

अस्तु, एक बात नितान्त स्पष्ट है—कोई नहीं जानता कि हम ने जीवन यात्रा कब से आरम्भ की थी, और हम सब प्रारम्भ में सर्वथा एक थे, एक से थे, किसी बात में हमारी परस्पर भिन्नता न थी—दुःख-सुख, ज्ञान-अज्ञान, शुद्ध-अशुद्ध, बुद्ध-अबुद्ध, मुक्त-अमुक्त सब में मूलतः, एक थे, पर हम आज तो निश्चय पूर्वक सब प्रत्येक बात में अलग-अलग हैं। कोई दो पुरुष एक से नहीं, कोई दो गायें एक सी नहीं, कोई दो शेर एक से नहीं, कोई दो मक्खियां एक सी नहीं। कहीं तो अन्तर है ही, मनोबलों में अन्तर है, प्राण-बल में अन्तर है, ज्ञान-क्षमता में अन्तर है, समस्त इतिहास में अन्तर है। लगता है कि सभी बातों में अन्तर है—प्रत्येक दृष्टि से शरीरधारी जीवात्माओं में एक व्यक्तित्व है, एक पार्थक्य है, एक स्पष्ट भिन्नता है। जन्म के समय ही हम यह भिन्नता अपने साथ लाये थे—इसे हम संस्कार भी कहते हैं। हम में से हर एक अपने-अपने पूर्व-जन्म के संस्कार लेकर आया है। जब मृत्यु होगी, हम अपने साथ अपने समस्त अतीत के संस्कार लेकर अगले जीवन में प्रविष्ट होंगे। इन्हीं संस्कारों का नाम सांख्य दर्शन के आचार्य कपिल ने अदृष्ट रक्खा है। यह वह अज्ञात धरोहर है, हमारी अपनी पिछली और आज की अर्जित सम्पत्ति है, जिसे हम अपने साथ लादे हुए यात्रा में आगे बढ़ते हैं, और सब यह अदृष्ट अलग-अलग हैं। इसने हमारे वर्तमान व्यक्तित्व को जन्म दिया है।

चलते चलो आगे बढ़ो
रुकना नहीं रुक न सकते
चलते हुए पहुंचे यहां
भीड़ इतनी साथ में है
भीड़ इतनी पीछे पीछे
भीड़ दायें भीड़ बायें

बोलो नहीं चलते चलो
थकना नहीं दूर जाना
हंसते हुए रोते हुए
मेरे पथिक चिन्तित पथिक
हर्षित पथिक वीरो बढ़ो
शूरो बढ़ो कायर बढ़ो
कर्मठ बढ़ो बढ़ते रहो
कविवर बढ़ो तुक्कड़ बढ़ो
गायक बढ़ो नर्तक बढ़ो
भावुक बढ़ो सहृदय बढ़ो
कोमल बढ़ो वज्रो बढ़ो
भाग्यवादी तुम भी बढ़ो
भोग वादी तुम भी बढ़ो
भक्त वत्सल बढ़ना तुम्हें
वीर योद्धा कर्मठ श्रमी
मार्ग लम्बा कण्टक भरा
फिर भी कहीं सम्भवतया
पुष्प सज्जित कोमल सुखद
आँखें खोले बढ़ते रहो
सोते हुए सपने भरे
चलते चलो रुकना नहीं
कौन आगे कौन पीछे
देखो नहीं पूछो नहीं
व्यर्थ की ही प्रश्न-ऊहा
क्षितिज-तारा चमचमाता
सामने है इतना निकट
देखो उसे चलते चलो

मेरे पथिक इतना चलें
फिर भी चलो चलते रहो
मार्ग दर्शक पथ प्रवर्तक
क्षितिज तारा चमचमाता
चलना उधर लक्ष्य वह है
कितना निकट दूर कितना !!

षष्ठ रश्मि

यह जगत् अद्भुत निराला ।
ज्योति के पीछे छिपा है झुटपुटा सा धुन्ध काला ॥
प्यार के पीछे छिपी है स्वार्थमय दुख को कहानी ।
ज्ञान के परिवेश में हैं घूमते छद्माभिमानी ॥
सत्य के मुख पर ढका क्यों झूठ का स्वर्णावरण है ।
त्याग के भीतर छिपा क्यों भोग का मिथ्याचरण है ॥
देह चिकनी रूप मोहक किन्तु यह कंकाल कैसा ।
प्रेम के शृङ्गार में वीभत्स सा यह जाल कैसा ॥
मृत्यु के इस द्वार से अमरत्व का आह्वान कैसा ।
शाप की अभिशृङ्खला में क्यों कहां वरदान कैसा ॥

सब जगह एक ही रोना है—जिसे देखो वही दुःखी है किसी को कोई कष्ट, किसी को कोई । अपने भाग्य से सब परेशान हैं । पड़ोसियों को सब सुखी समझते हैं । मैं गरीब हूं, पास वाले घर में दौलत क्यों बरस रही है । मेरा बच्चा बीमार है, पड़ोसी का बच्चा हंसता खेलता चहक रहा है । मेरे ऊपर पांच प्राणियों की चिन्ता है—अच्छा हुआ मेरे अमुक मित्र ने गृहस्थी ही नहीं बसाई, वह गुलछर्रे मार रहा है । मेरे पति ने महीनों मेरे लिए नयी साड़ी नहीं खरीदी, और उस कमला को तो देखो—सोमवार की साड़ी अलग, मंगल की अलग, जब देखो, मानो बाजार की सबसे नयी साड़ी सबसे पहले उसी के घर आती है । उसके घर में तो सोना बरसता है ।

ओ बूढ़ी मां ! तू क्यों परेशान है ? क्या कहूं स्वामी जी, बहुत ढूंढ़-ढाँढ़ के मुन्नू के लिए बहू लाई—चार बरस हो गये हैं, पर उसकी कोख खाली की खाली ! अरी माँ ! तो इसमें क्या बुरा हुआ ! तेरी

बहू तो बड़ी अच्छी है तेरी तो सेवा करती है। पर बुड्ढी मां को पोता चाहिए। चली जा रही है, कबर पर चादर चढ़ाने, पीर-फकीर से दुआ करने। उसे पोता चाहिए, पोता।

और भाई, तू क्यों परेशान ? परेशान न रहूं, तो कैसे न रहूं। घर में तीन-तीन बिटियां, कालेज की पढ़ायी खतम होने आ रही है। तीनों घर बैठी हैं। बड़ी कहती है—शादी ही नहीं करूंगी ! वह करे भी कैसे, उसे कोई लड़का पसन्द नहीं आ रहा। जो पसन्द आ रहा है, उसके लिए पच्चीस हजार रुपया कहां से लाऊं। बड़ी की जब तक शादी न हो छोटी की कैसे की जाये !

शिकायत सब को है। बहू को सास से शिकायत सास निरी बुढ़िया है, पुराने जमाने की। वह तो बेटी-दामाद की रट लगाती है। कितना भी बेटी को दो, दामाद की कितनी भी खातिर करो—पर सास कोई न कोई बखेड़ा खड़ा कर देती है। मेरे भी तो बेटे-बेटी हैं। घर से बाहर निकलने की मेरी भी तो उमर है। पति के साथ सिनेमा चली गयी, तो क्या बुरा हो गया। पर बुढ़िया सास मेरे ऊपर तो पहरा दे रही है।

सास-बहू का झगड़ा, जब से दुनिया बनी तब से चला आ रहा है। जो आज बहू है, वह कल सास बनेगी, उसके घर भी पतोहू आवेगी, पर सास-बहू के झगड़े का चक्कर समाप्त होने वाला नहीं।

आज युवकों की बुड्ढों से नहीं बनती, मानो कि ये युवक कभी बुड्ढे होंगे ही नहीं, और मानो ये बुड्ढे कभी युवक थे ही नहीं ! युवक कहते हैं—दुनिया बदल गयी, और इस बदली दुनिया में बुड्ढों के विचारों से—दकियानूसी विचारों से—कैसे काम चलेगा। बुड्ढों को अपने पुराने अनुभवों पर अभिमान है। हम तो अपने समय में ऐसा करते थे, ऐसे रहते थे। बीस रुपये मास भर में वेतन के मिलते थे, पर गेहूं के बोरे घर में रहते—शक्कर और घी की कमी नहीं पड़ी।

इस नयी बहूरानी को देखो। मेरा बेटा २०० रुपया कमाता है, पर यह एक दिन भी घी का हलुआ नहीं बना पाती। बुड्ढे को अपने समय की याद है—यही उसको परेशानी है। बेटा नये युग का है, यह उसकी परेशानी है। बदलती हुई दुनिया में बदलो तो मुश्किल, न बदलो तो मुश्किल।

संसार दौड़ता चला जा रहा है मकान का आज फर्नीचर लिया, बड़े चाव से नये ढंग का, नयी चाल का। लकड़ी का फर्नीचर सम्भाल कर रक्खो तो सदियों चल सकता है। मैंने इंग्लैंड में शेक्सपियर का घर देखा पुराना फर्नीचर सुरक्षित है। वाशिंगटन में अमरीका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन का भवन देखा, उस समय का फर्नीचर आज तक सुरक्षित है, वाशिंगटन तो १७९९ में मर गया। फ्रैंकफुर्ट में १९६० की जर्मन देश की यात्रा में मैंने प्रसिद्ध कवि गेटे का स्मारक देखा। उसकी कुर्सी पर मैं भी चाव से बैठ गया। फर्नीचर बड़ा टिकाऊ होता है—गेटे १८३२ में मर गया, पर मेज कुर्सी अभी न जाने कितने युग चलेगी : किन्तु आज नया घर बनवाने वाले की परेशानी दूसरी है। १९ ० में घर बनवाया—१९७७ में ही दोस्त-यार कहने लगे—तेरा फर्नीचर आउट-आव्-डेट है, पुरानी फैशन का हो गया है। फर्नीचर तो शान के लिए खरीदा जाता है, पर अब जब मित्र कहते हैं, कि यह आउट-आव्-डेट है, तो फिर इसे निकालो—दूसरा लाओ। यही बात मोटर की है, यही रेडियो सेट की है—फैशन रोज बदल रहा है और अब हम जमाने के साथ रहने वाले बन गए हैं। फर्नीचर अपटुडेट हो, कार अपटुडेट हो, घर अपटुडेट हो, रहन-सहन अपटुडेट हो, और बीबियां भी अपटुडेट हों। पुरानी परम्परा एण्टीक की पुजारी थी—घर में पुरानी से पुरानी चीज हो, तो उस पर गर्व था। अब अप-टु-डेट की मांग है।

अप-टु-डेट चीजों की मांगों के बीच में एण्टीक की मांग की फिर एक नई प्रथा चल गई है : अमरीका में कबाड़ियों की दूकानें हैं, जिन

पर पुराने से पुरानी चीजें बढ़े-चढ़े दामों में मिलती हैं। सत्रहवीं शती की लालटेन, पुराने से पुरानी छतरी, ड्राइंगरूम में कोई तो चीज पुराने के नाम से खरीदी गयी सजाकर रखने की प्रथा है। पुराने तरह की दीवारें, पुरानी सभ्यता के मकान – "स्पैनिश हाउस" वाहर से देखने पर जंगलियों की सी झोंपड़ियां, भारत में जापानी ढाँचों के घर—नयी दीवारों पर ऐसी पेण्ट कर देना कि मालूम पड़े, तुम्हारा घर सोलहवीं शती का है। यह भी नया फैशन चला है। हम अजीब दुनिया में रह रहे हैं – जिसका अनुमान लगाना भी कठिन है। कोई नये बनने के लिए परेशान है, तो कोई पुराना बनने के लिए। नयी-नयी चिन्तायें हमने मोल ले ली हैं। और ऐसी दुनिया में बैठकर हम कभी गम्भीरता से कहते हैं—जीवन माया है, छल है, दुखों का डेरा है, शैतान की सृष्टि है, घोर नरक है। क्या पड़ती थी उस ईश्वर को जो उसने सृष्टि बनायी, और उसमें हमें पैदा किया।

अस्पतालों में चले जाओ—मरीजों की कमी नहीं है। आँखों के अस्पताल आँखों के रोगियों से भरे पड़े हैं, कोढ़ियों के अस्पताल में ऐसा लगता है, कि मानो यह दुनिया कोढ़ियों की वस्ती वन गयी है। कैन्सर के अस्पताल अब सभी सभ्य देशों में बढ़ते जा रहे हैं, जहां अमीर गरीब कराहकर अपने जीवन की अन्तिम श्वासें ले रहे हैं। प्लेग, चेचक, हैजा, और यक्ष्मा के रोगों से छुटकारा मिला, तो नयी सभ्यता में नये भयंकर रोग पैदा हो गए। डाक्टरों और वैज्ञानिकों ने चिकित्सा शास्त्र का विकास किया कि कोई मरे नहीं, पर प्रकृति ने और भी अधिक भयंकर रोग तैयार करके सामने रख दिये, और मानो प्रकृति चिल्ला-चिल्ला करके घोषित कर रही है, कि मनुष्यो याद रक्खो, तुम मर्त्यप्राणी हो—मृत्यु से नहीं वच सकते। मृत्यु का कोई वहाना तो चाहिए—भयंकर रोग और आकस्मिक दुर्घटनायें।

एक जमाना था, जब सबसे अधिक मृत्युएँ राज-यक्ष्मा या क्षय रोग से होती थी—इस रोग का इलाज तो डाक्टरों ने निकाल लिया

है। पर अब इस नये जमाने में सबसे अधिक मृत्युयें आकस्मिक दुर्घटनाओं से होती हैं। यूरोप, अमरीका और पश्चिमी सभ्यता पर बसाये अफ्रीका में शनिवार और रविवार को छुट्टी हुई—लोग छुट्टियां मनाने के लिए घरों से निकल पड़े—सब लोगों के पास कारें हैं—देशों में एक सिरे से दूसरे तक जाने वाले नेशनल हाइवेज (राष्ट्रीय मार्ग) हैं, और उन पर लोग ६० मील से ८० मील प्रति घंटा के हिसाब से दौड़ लगाते हैं। कार भी आखिर एक यंत्र ही तो है। दुनिया में सैकड़ों मृत्युयें कारों की इस दौड़ में हो जाती हैं—कहीं चले जाइये, सड़कों पर लारी उल्टी पड़ी है—शराब के नशे में चूर, घोर रात्रि में बेतहाशा तेजी से दौड़ाने वाले मोटर ड्राईवर भयंकर ऐक्सिडेंट करा देते हैं। ये ऐक्सिडेंट तो आये दिन की बात है—इन्हें आकस्मिक नाम देना अपने को धोखा देना है।

मेरे प्रयाग नगर में ही मित्र हैं—उनके लड़के और नव विवाहिता वधू की मृत्यु विदेश में कार चलाने से हो गयी। उसकी वेदना माता-पिता को आज तक नहीं भूली। मेरे एक मित्र प्रयाग विश्वविद्यालय के कामर्स विभाग के अध्यक्ष की मृत्यु हवाई जहाज की दुर्घटना से हो गयी। देश के लब्ध प्रतिष्ठ वैज्ञानिक होमी भाभा की मृत्यु भी आल्प्स पर्वतों के निकट इसी प्रकार हुई। अल-इटेलिया ऐसा जहाज भारत में आकर नष्ट-भ्रष्ट हो गया, और सैकड़ों जानें गयीं। मेरे परिचित रसायन जगत् के प्रकाण्ड वैज्ञानिक प्रोफेसर नायहाल्म (Nyholm) कार दुर्घटना में मरे। मेडमक्यूरी के पति पियरे क्यूरी पेरिस-सौरबां में सड़क पार कर रहे थे—नोबेल पुरस्कार विजेता था—मोटर ने टक्कर लगायी, और सड़क पर ही ढेर हो गये। हम दुनिया में आज तेजी से दौड़ रहे हैं, और यह तेजी ही हमारे लिए घातक बन रही है।

मनुष्य पैदल चलता था—उसने जानवरों से तेजी उधार ली, घोड़े, बैल, ऊंट और हाथी की सवारी आरम्भ की। उससे सन्तोष

न हुआ, तो रेलगाड़ियां बनायीं। समझा तो यह था कि समय की बचत होगी—आराम और विश्राम के लिए अधिक समय मिलेगा—क्योंकि विश्राम का ही दूसरा नाम सुख है। रेल के बाद सरपट चलने वाली मोटरें बनीं, और कहां तक गिनाया जाय, हवा से भी अधिक तेज जाने वाले हवाई जहाज बने, तीस हजार फुट की ऊंचाई पर उड़ने वाले ५०० मील प्रति घंटा से चलने वाले। अब तो चन्द्रलोक और मंगल लोक में जाकर बसने का इरादा है। दिन दूर नहीं है—पृथ्वी का आदमी न जाने कहां से कहां पहुंच जाये। "तेज चलो" का नारा है, चलो ही नहीं, दौड़ो; दौड़ो ही नहीं उड़ो! क्यों यह सब, जिससे हमें विश्राम के क्षण अधिक मिलें—जो काम देरी में होता है, उसे जल्दी निपटा दें, और फिर विश्राम की घड़ियों में गुलछर्रे उड़ायें। पर अभागे मनुष्य को यह विश्राम अब तक न मिल पाया। पांच सौ मील प्रति घंटा उड़ने की आदत पड़ गयी—तो काम के बहाने दुनिया का चक्कर लगाने लगा। इस व्यग्रता में शान्ति कहां और शान्ति नहीं तो सुख कहां;

मनुष्य का शरीर भी एक यन्त्र है, इसके स्वस्थ रहने की भी सीमायें हैं—जब आप रेलगाड़ी में ६० मील प्रतिघंटा की तेजी से दौड़ते हैं, तो शरीर को इस गति के अनुकूल अपने को बनाना पड़ता है। हवाई जहाज में ५०० मील की गति से चलते हैं, तब भी आपको इस नयी परिस्थिति के अनुकूल अपने शरीर की सहनशीलता विकसित करनी पड़ती है। इस दौड़ में खून के तनाव का सन्तुलन रखना आसान काम नहीं है। वातानुकूलन या एयर-कण्डशनिंग के प्रबन्ध आपकी सहायता बहुत कुछ करते हैं, पर फिर भी इसकी सीमा है। यही कारण है, कि तेजी की दौड़ में हमने मस्तिष्क को थका रक्खा है, और हृदय को मसल डाला है। इसके ऊपर भी सारी दुनिया की नयी-नयी चिन्तायें हमने मोल ले रक्खी हैं। जितना ही जो अमीर है, उतनी ही चिन्तायें उसके पास बढ़ गयी हैं, उतने ही अधिक टेली-

फोन उसके मस्तिष्क को हर घड़ी परेशान करते रहते हैं। आज की सभ्यता का सफल और अमीर व्यक्ति न तो खा सकता है, न पी सकता है, और न आराम कर सकता है। सुख के साधन हमने जुटाये और उन साधनों के द्वारा हमने नये अभिशाप मोल ले डाले।

इन सब बातों का घोर परिणाम देखना हो, तो अस्पतालों में चले जाइये, जेलों का निरीक्षण कीजिए और पागलखानों का निरीक्षण कीजिये। मरीजों की सेवा के लिए हमने प्रबन्ध किये—इससे बढ़कर उपकार क्या होगा, पर मरीज भी तो हम बराबर तैयार करते जा रहे हैं। पापियों और दुराचारियों के आतंक से जनता की रक्षा करो और इस काम के लिए न्यायालय और जेल बनाओ—यह भी उपकार का काम है, पर समाज में ऐसी स्थिति पैदा कर दो कि लोग अपराध क्रूरतम और नये तरीकों से करना आरम्भ कर दें—तो इसे कौन सुव्यवस्था कहेगा। पागलखानों में पागलों का अवश्य इलाज कीजिए, पर यह भी तो देखिये कि पागलखानों के बाहर लोग पागल तो न बनें।

यह कभी मत भूलना कि जितने मरीज अस्पतालों में हैं उनसे अधिक मरीज अस्पतालों के बाहर हैं, और जितने अपराधी जेलों में हैं, उनसे कई सौ गुना अधिक अपराधी हमारे घरों में और हमारे समाज में हैं। इसी प्रकार पागलखानों में तो थोड़े से ही पागल बन्द हैं, उनसे अधिक संख्या उन पागलों की है, जिन्हें न हम पागल समझते हैं, न जो अपने को पागल समझते हैं।

सुख चाहता था खोज में उसकी चला
जो कुछ मिला वह सुख न था कुछ और था
चलता गया चलता रहा चंगा भला
इस दौड़ में जो कुछ मिला निकली बला
मैं बांध गठरी इस बला की चल दिया

आगे बढ़ा देखीं बलायें दूसरी
मैंने बटोरी साथ में सबको लिया
जो कुछ किया अब तक किया यह ही किया
यह है जगत् संसार इसका नाम है
ठहरो जरा, सोचो तनिक, आगे बढ़ो
अभिमान का होता बुरा परिणाम है
चलते चलो चलना तुम्हारा काम है

सप्तम रश्मि

धिक् पथिक तू बोल यह अज्ञान कैसा
नित्य निश्चल तत्त्व की करके उपेक्षा
चर जगत् में मूर्ख ! यह अभिमान कैसा
सत्य को तज झूठ का आह्वान कैसा
पुण्यमय शुचि में अशुचि की भावना क्यों
दुख को कलायण माना सुख समझ कर
शाप में वरनान की यह कामना क्यों
मुक्ति पथ पर वन्धनों की याचना क्यों
जो किया उलटा किया कुछ भी न पाया
देख करके वेवसी झल्ला उठा हूं,
गांठ में जो कुछ बंधा वह भी गंवाया
हाथ से सत् भी गया पायी न माया

शरीर धारण करके संसार में हम इसलिए आये थे, कि कुछ ज्ञान प्राप्त करेंगे, और कुछ आनन्द। ज्ञान और आनन्द साथ-साथ चलते हैं। अज्ञान और आनन्द का कोई सम्बन्ध नहीं। ज्ञान मिलेगा, तो आनन्द में वृद्धि होगी ही। वह ज्ञान ही क्या जो आनन्द न दे। यह कहना कठिन है कि ज्ञान क्या है ? यह भी कहना कठिन है कि आनन्द क्या है। आनन्द का अनुभव तो होता है, पर हम वता नहीं पाते कि है यह क्या। आनन्द न इन्द्रियों मे भोगा जाता है, और न मन से। यह तो वह रस है जिसे आत्मा स्वयं पाता है। इसी का नाम सोम है, सोमरस है, सोम राजा है। आत्मा का एक नाम इन्द्र है। सोमरस पीने का अधिकार केवल इन्द्र को है, और किसी को नहीं। मैं इन्द्र हूं, तुम भी इन्द्र हो, तुम भी सोम रस पीओ, मैं भी

पियूं । कान, नाक, जिह्वा, आँख और स्पर्श—ये इन्द्रियां हैं, इन्द्र नहीं हैं। इन इन्द्रियों को देवता या देव भी कहते हैं। तुम्हारा मुँह सात-ऋषियों का बसेरा है—दो आँखें, दो नाक के छेद, दो कान और एक मुख के भीतर की रसना या जिह्वा। पर याद रखना कि आनन्द या सोमरस पीने का एकमात्र अधिकार आत्मा को है, जो वस्तुतः "तुम" हो। ज्ञान भी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा आत्मा को होता है, न कि इन्द्रियों को। यह भूल जाओ कि आँख देखती है। वस्तुतः आँख के झरोखे के पीछे बैठे हुए तुम देखते हो। भूल जाओ, कि तुम्हारे कान सुनते हैं, कानों के गोल के पीछे बैठे हुए तुम सुनते हो। तुम्हारी नाक नहीं सूंघती—नाक के बहुत पीछे कहीं छिपे से बैठे हुए तुम सूंघ रहे हो। तुम भूल करोगे यदि तुम समझो कि तुम्हारी जिह्वा तरह-तरह के स्वाद ले रही है। यह माँस की छोटी-सी लोथड़ी स्वाद क्या लेगी। इसके पीछे बैठे हुए तुम स्वाद ले रहे हो। याद रहे कि तुम्हें ही रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श का ज्ञान हो रहा है, और जब तुम्हें इस ज्ञान से सन्तुष्टि होती है, तो तुम्हें आनन्द की छोटी-सी झलक मिलने लगती है। ज्ञान में ही आनन्द है, ज्ञान के अभाव में आनन्द शून्य है। ज्ञान का नाम ही विद्या है। विद्या से अथवा ज्ञान से ही मुक्ति है—ज्ञानान्मुक्तिः (ज्ञान से मुक्ति है), ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः (विना ज्ञान के मुक्ति नहीं), विद्ययाऽमृतम्-अश्नुते, विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है—ये सब हमारे साहित्य की प्रसिद्ध उक्तियाँ हैं। सोम रस का पान, अमृत का पान, आनन्द मुक्ति—यह सब एक ही बाद है। बिना ज्ञान के यह आनन्द मिलने को नहीं। ज्ञान की प्राप्ति आत्मा को होती है, न कि ज्ञानेन्द्रियों को, और इसीलिए आनन्द की अनुभूति भी इन्द्र या आत्मा को होती है, और किसी को नहीं।

हम आनन्द चाहते हैं, पर हमारे पास वह है नहीं। जिस किसी के पास हो, चलो उससे चल कर माँगें। भीख माँगने में संकोच क्या, शरम और लाज क्या! हमें एक बूंद आनन्द ही चाहिए, अधिक तो

हम पचा भी नहीं सकते। एक बूंद हमें मिल जायेगा, तो देने वाले के भण्डार में इतने से क्या कोई कमी आ जावेगी!! रसो वै सः, वह वह देने वाला तो आनन्द ही आनन्द है, रस ही रस है। वह ज्ञान ही ज्ञान है, आनन्द ही आनन्द है। वह तो प्रदीप्त दहकती भट्टी के समान हैं, हम हैं छोटे से लोहे के काले कण। भट्टी में जाकर हम भी दहकने लगेंगे - हमारे वहाँ पहुंचने से भट्टी की चमक-दमक में कोई कमी नहीं आ जावेगी। चलो, उससे ज्ञान माँग लें, आनन्द भी भला कोई माँगने की चीज है; अगर ज्ञान वह देगा, तो आनन्द तो उसके साथ खिचा चला आवेगा। ज्ञान विना आनन्द के रह नहीं सकता। अगर रोशनी, आलोक या दिव्य ज्योति मिल गयी, तो प्यार की उष्णता अपने आप खिची चली आवेगी—जहाँ प्रकाश या ज्योति है, गरमी और उष्णता वहाँ अपने आप रहेगी। चलो, उस प्रभु से, उस राजाधिराज से, राजेन्द्र, देवेन्द्र या महेन्द्र से ज्ञान की याचना के लिए चलें और इसके सोम रस के अगाध भण्डार से एक बूंद पाकर छक लें।

हम प्रभु के द्वार के भिखारी बनकर ज्ञान की याचना करने के चल पड़े। कहाँ है वह? कहाँ है उसका दरवाजा, कहाँ है उसका घर - पता नहीं, चले जा रहे थे। मार्ग में शैतान मिल गया--बड़ी मोहिनी सूरत थी उसकी, वह साथ चलने लगा। उसने हमसे दोस्ती कर ली—प्यारी-प्यारी बातें करने लगा। पूछा कि कहाँ जाते हो। हमने कहा कि प्रभु के महल का नाम सुना है, वहाँ ज्ञान मिलता है, आनन्द मिलता है? हमें ज्ञान की भीख माँगनी है, आनन्द की भीख माँगनी है। सुनते हैं कि वह बड़ा उदार है, दानी है। हमारे ऊपर दया करेगा, कुछ देगा! शैतान ने बड़े ध्यान से हमारी बातें सुनीं, इतने प्यार से जैसा कि उससे बड़ा हमारा कोई सगा शुभचिन्तक नहीं।

बड़े करुणा भाव से शैतान ने हमारी ओर देखा वह प्यार से

वोला—हाँ सुना तो था, कि जिसे तू प्रभु कहता है, वह रहता तो कहीं था—पर तुम जानते हो, कि वह बुड्ढा हो गया उसके पास जो कुछ था दूसरे लूटकर खा गए, अव तो उसने महल भी उजाड़ दिया, शायद वह महल गिर भी गया है। सुनते हैं, कि वह यहाँ से भाग गया। बुड्ढा तो था ही वह, शायद अव मर भी गया हो। कहाँ जाते हो, क्यों भटकते हो ? मैं तो सव जगह आता जाता हूं—अब उसका घर यहाँ कहीं नहीं है। वेचारा बुड्ढा कव का मर गया !! दफना दिया गया ! चलो मेरे साथ चलो—तुम्हें आनन्द ही तो चाहिए, मजे करना। शैतान वहकाकर उलटे मार्ग पर ले आया—आँखों से हम ने रूपवती और रूपवानों को देखा, कानों ने रसिकों के गान सुने, स्पर्शेन्द्रिय ने वासना की गोद में हमें घसीट लिया। भीतर की ओर न जाकर हम वाहर की ओर फिर बहक आये। रसिकता और वासना के परिणाम ने हमें राग, द्वेष, कलह, युद्ध, विग्रह की नालियों में फेंक दिया। शैतान अपनी विजय पर मुसका कर वोला—मैं ही खुदा हूं, मैं ही परमेश्वर।

यह शैतान कौन है, जो ईश्वर को चुनौती दे रहा है, अवोधों को भटका रहा है, ज्ञानियों को मूर्ख वना रहा है। विदेशियों ने इसका नाम शैतान रक्खा, हमारे ऋषि-मुनियों ने इसका नाम असुर, वृत्र, अविद्या, अज्ञान, रक्षस् या राक्षस, अहि (भयानक सर्प), और न जाने क्या रक्खा। आत्मा इन्द्र है। इन्द्र का शत्रु वृत्र है। वृत्रासुर संग्राम प्रसिद्ध है। जव से सृष्टि है, असुर या वृत्र को मारने का प्रयत्न होता आ रहा है। मरा न वृत्र, मरा न इन्द्र। जीवन का रहस्य न इन्द्र के मरने में है और न वृत्र के। मरेगा कोई नहीं—देव भी रहेंगे, और असुर भी। इन्द्र भी रहेगा, और वृत्र भो ? खुदा भी रहेगा और शैतान भी—युद्ध चलता रहेगा।

हमारे ग्रन्थों में कहा है, कि प्रजापति की दो सन्तानें प्रारम्भ से चली आ रही हैं। जव से प्रजापति, तव से ही यह सन्तानें हैं। जव से

पिता हो, तब से ही सन्तानें हों, यह लगता तो विचित्र है, पर प्रजापति का न कभी शैशव था, न यौवन; न वह कभी प्रौढ़ होगा, न वुड्ढा, न कभी वह पैदा हुआ, न वह मरेगा। अनादि और अनन्त उसका विस्तार है—सोमाओं से परे। काल की सीमाओं से भी परे, और देश की सीमाओं से भी परे, और देश की सीमाओं से परे। उसके लिए न कोई भूत है, न वर्तमान, न भविष्य—उसके लिए तो सब कुछ जो है, सो है, वह सदा वर्तमान में है, उसके लिए एक ही काल है, शाश्वत सत्य, उसके लिए सब प्रत्यक्ष है, कुछ भी परोक्ष नहों, उसके लिए सभी अद्य है, कोई क्षण ह्यः और श्वः नहीं—'वह था, वह होगा, ये शव्द उसके लिए हैं ही नहीं; वह सदा से ही बड़ा है, जितना वड़ा आज है, उतना ही वड़ा पहले भी था, 'पहले भी ब्रह्म था, आज भी ब्रह्म है, और कल भी ब्रह्म रहेगा।' ऐसा तो हम अपनी अनित्यता की दृष्टि से मूर्खता वश कहने लगते हैं। वह तो स्वयं में 'अहं ब्रह्मास्मि' है। उसके लिए तो उसका ही शब्द है—'अहम् अस्मि, मैं था, मैं हूंगा—ये शब्द न उसके लिए हैं, न उसकी सन्तान के लिए। सन्तान सदा से शून्यं या खं है, प्रभु सदा से ब्रह्म है। अहं ब्रह्मास्मि—उसके लिए है, हमारे लिए तो अहं खमस्मि, अहं शून्यमस्मि। शून्य या खं का अर्थ अभाव नहीं है, नास्तित्व नहीं है—हमारे अणुत्व, सूक्ष्म, या शून्य होने की उसी प्रकार थाह नहीं है, जिस प्रकार प्रभु के वृहत् होने को। प्रभु की विशेषता उसके महत्तम होने में है, और हम को अपने अणुतम होने का उसी प्रकार गर्व है। प्रभु से कोई बड़ा नहीं, हम से कोई छोटा नहीं। न वह सिकुड़कर या टूटकर, खण्डित वा पतित होकर मैं हो सकता है अर्थात् मेरा ऐसा अणु हो सकता है, और न मैं फैलकर या वहुतों से जुड़कर या विकसित होकर उसका सा विभु या महत् (ब्रह्म) हो सकता हूं। स्वभाव से हम दोनों अदिति हैं (अदिति-जिसके खण्ड न हो सकें), दोनों शाश्वत काल से विद्यमान हैं, मैं अपनी अणुता के लिये हो, अपनी निर्वलता और अपनी परवशता लिये हुए। मेरा प्रभु शाश्वत काल

से हो अपनी विभुता और प्रभुता लिये हुए हमारी परवशता का आश्रयदाता बना हुआ है। हमारी निर्बलता, अणुता, परवशता ही का दूसरा नाम शैतान, अज्ञान, वृत्र या माया है। मेरे भीतर मेरी निर्बलता, मेरी शून्यता, मेरी परवशता सहज रूप में विद्यमान है, और साथ ही साथ मेरा प्रभु भी व्यापक भाव से मेरे भीतर ही है। हम अपने को उससे दूर समझते हैं, इसीलिए भटकते हैं, और फिर हम उसको वहाँ पाना चाहते है, जहाँ हम नहीं हैं। अपने से बाहर हम उसे पाने की चेष्टा कर रहे हैं—इसीलिए कैसे मिले वही।

जो है इसे हम चाहते भी हैं नहीं
जो है नहीं उसकी हमें क्यों चाह है।
प्रिय क्यों न हमको पास में जो है यहीं
अनजान की क्यों बस हमें परवाह है
डोरी सरल थी किन्तु उलझाते रहे
कोई समस्या थी नहीं फिर भी बनी
उलझी हुई हर वार सुलझाते रहे
फिर दे सकी जीवन न यह सञ्जीवनी
कट जायेंगे दिन भी हमारे रात भी
सायं वही प्रातः वही घड़ियां वही
हम पर हंसेंगे ज्ञात भी अज्ञात भी
अब तक सुनी सुनती पड़ी सबकी कही
केवल नहीं उसकी सुनी जो पास था
अवहेलना करते रहे उसकी सदा
हमको न क्यों उसका हुआ विश्वास था
विपदा जुटा लीं छोड़ शाश्वत सम्पदा
कर दो क्षमा, कैसे कहें साहस नहीं
हम जन्म के पापी रहे कायर रहे
दिन जो गये आते कभी वापस नहीं
बहते रहो वैसे बहो जैसे बहे

अष्टम रश्मि

तप ले तप ले रे तनु तप ले
साथ साथ मेरे हे मनुआ नाम उसी का जप ले
जिसकी है यह धरती माया
जिसने दी यह सुन्दर काया
जिसने यह संसार बनाया
दो दिन के इस जीवन में तू क्षण भर अरे पनप ले
—तप ले तप ले०

जिसने तेरी अंखियां खोलीं
जिसने दी यह चितवन भोली
और कण्ठ में मीठी बोली
रे मानव, तू बैठा क्यों है उठ दो पग चल ले
—तप ले तप ले०

काली काली बदली आयी
घोर घटा यह नभ में छायी
कड़क कड़क बिजली चमकायी
देह कंपा मत ढिढरा मत उठ किसने कहा तड़प ले
—तप ले तप ले०

मन से भी तन से भी तब तू
शान्ति भाव से भीतर जप तू
प्रभु का देख दिव्य आतप तू
दो बातें जीवन में बस कुछ हंस ले या कि विलप ले
—तप ले तप ले०

यह जगत् बड़ा विचित्र है—जिसे देखो वह रो रहा है, शिकायतें कर रहा है, उलाहने दे रहा है। कभी अपने भाग्य को कोसता है,

कभी विगड़ता है, गाली देता है। जो वहुत शिष्टाचारी हैं, वे ऊपर से तो कुछ कहते नहीं, किन्तु उनका दिल भी भीतर से रो रहा है—अपनी गरीवी पर, अपनी कमजोरी या विवशता पर। क्या करें, किससे कहें ? कहें तो तब जब कोई सुने। सुनाने बैठो किसी को, तो वह कहता है, कि मैं तो तुमसे भी अधिक मुसीवत का मारा हूं—गनीमत है, कि तुम्हारी मुसीवतें और परेशानियां इतनी कम हैं। कहीं मेरी सुनो, तो तुम ही कहोगे, कि कव तक झेलोगो, मर क्यों नहीं जाते। चाहता तो हूं मरना, पर न जाने कौन दिल के भीतर बैठा मरने भी नहीं देता। मरूं तो तव जब मरने पाऊं। मरना भी मुसीवत, जीना भी मुसीवत।

इसी का नाम दुनिया है—जीना भी दुःखदायी, मरना भी असम्भव ! लोग कहते हैं, कि कौन रोकता है मरने से। हाथ तुम्हारे पास है, गला घोंट लो। रूमाल में पत्थर का टुकड़ा वांधकर कस के गले पर लपेटो, मर जाओगे ! नाक वन्द कर लो, ओठ पकड़ कर बैठ जाओ—दम घुट जायेगा। गले में रस्सी वांधकर लटक जाओ—कोठे पर से कूद पड़ो, पुल पर से नदी में छलांग भरो, रेल के चलते इंजिन के नीचे दव जाओ. सड़क पर साठ मील के तेजी से दौड़ती मोटर के नीचे आ जाओ, और नहीं, तो विष खा लो—वाजार से सायनाइड की गोलियां ले आओ. या ऐसी गोली खाकर मस्ती से सोओ, कि जगो ही न। और नहीं. तो पिस्तौल से अपने को शूट कर लो। किसी से भी पूछो सव जानते हैं मरने के नुसखे। कोई होश वाला आदमी तो मरता ही नहीं—शिकायतें लाखों-करोड़ों को, किन्तु मरने वाला विरला ही कोई पागल मिलता है।

मरना वीरता भी है और कायरता भी. मनुष्य ज्ञानपूर्वक भी आत्महत्या कर सकता है, और मूर्खतावश भी। सेना में आगे की पंक्ति में लड़ने वाले सिपाही जानते हैं, कि वे मारे जावेंगे, फिर भी हौंसले के साथ मरते-मारते हैं—विजय या पराजय, इससे मतलव

नहीं। मातृभूमि की सुरक्षा के लिए वलि हो जाना वीरता है। हारने पर दुश्मनों के हाथ में न पड़ जायें, इसलिए कूदकर, आग लगाकर, पिस्तौल से अपने को शूट करके, या विषैली गोलियां खा लेना थोड़ी सी कायरता अवश्य है, पर बुद्धिमत्ता है। शायद इसी वर्ग का शौर्य उन राजपूतानियों में था, जो दुश्मनों के हाथ में पड़ने से पहले ही चितायें सुलगाकर भस्म हो जाती थीं, और उनके पति केसरिया वाना पहनकर जीवन की अन्तिम वलि देने के लिए निकल पड़ते थे। पर पति के मरने पर उसकी मृतदेह के साथ चिता पर जल जाना मूर्खता और अज्ञान की पराकाष्ठा है। यह सती प्रथा भारतीय संस्कृति का कलंक वन गयी। किसी डूवते हुए वच्चे को वचाने के लिए जान की वाजी लगाकर नदी में कूद पड़ना, आत्महत्या नहीं, वीरता है—चाहे अपनी जान चली जाय। किन्तु परीक्षा में फेल या अनुत्तीर्ण विद्यार्थी का रेल की पटरी के नीचे दवकर आत्महत्या करना नितान्त कायरता और मूर्खता है। किसी को प्रेम किया, यह तो बुरा नहीं, किन्तु प्रेम पाने में असफल रहने पर प्रेमी या प्रेमिका की आत्महत्या कर लेना भावुकता की चरम सीमा तो है, किन्तु न वीरता है, न होश की वात। प्रेम के पथ पर चलने पर अपने प्रतिद्वन्द्वी की हत्या करना तो नितान्त और निकृष्टतम अपराध है।

जीवन के रहस्य को समझने के कारण मनुष्य पागल हो उठता है। जीवन-दर्शन का पाठ सूक्ष्मता से वचपन से ही सिखाना चाहिए। हम यों ही इस शरीर में नहीं डाल दिए गए हैं। प्रभु ने यह सृष्टि बेकार नहीं वना डाली, और हमें इस सृष्टि में बेकार अपराधी या वन्दी वनाकर नहीं भेजा है। जीवन वरदान है, विधाता की ओर से मिला कोई अभिशाप नहीं, जीवन के मार्ग पर खुशी-खुशी चलो। हंसते चलो, कमर कस के चलो। गरीवी आवेगी, मुसीवतें आवेंगी, लोगों से टक्करें लगेंगी, ठोकरें खाओगे, दुर्दशा सामने आवेगी—कोई भी मुसीवतों से नहीं वचा है। वीमारियाँ आती हैं—नन्हें-मुन्ने वच्चे

को भी, हट्टे-कट्टे जवानों को भी, मूर्खों को भी, पंडितों को भी—पर सभी झेलते हैं। जब ये आवें, प्रभु को न भूलना, जिसने तुम्हारे पेट को भी भूख दी, और सृष्टि में अन्न, फल, और दूध दिया। तुम्हें जो आँखें दीं, आँखों में देखने की शक्ति दी, ऐसी प्यारी आँखें लाखों-करोड़ों रुपये में भी बाजार में नहीं खरीदी जा सकतीं। हमारी जितनी पात्रता थी, उससे अधिक वस्तुएं प्रभु ने हमें प्यार से दी हैं। इनकी कीमत समझो। संसार की सारी सम्पत्ति खर्च करके भी छोटे से बालक का एक शरीर कारखाने में तैयार नहीं किया जा सकता। इस बात का मूल्य समझो।

हमारे इस शरीर का पोषण तपस्या से होता है, आराम या विश्राम से नहीं संभल कर इससे काम लो, इसे कुछ थका डालो—यह स्वस्थ रहेगा। गुदगुदे गद्दों पर लिटाकर एक सप्ताह रख छोड़ो—शरीर बेकार होने लगेगा। यह शरीर तपस्या से बना है, तपस्या करने के लिए बना है। पहलवानी करो, कुश्ती लड़ो, मुक्के खाओ—शरीर अच्छा रहेगा। प्रभु की तपस्या से सारा ब्रह्माण्ड बना है, प्रभु के तप के आधार सूर्य तपता है, धरती तप करती हुई सूर्य का चक्कर लगाती है—समस्त सृष्टि में तप ही तप है वृक्षों और पौधों को देखो—शीत-उष्ण, सब कुछ सहते हुए, परिस्थितियों से लड़कर उनको अपने अनुकूल बनाते हुए, और कभी स्वयं अपने को उनके बनाते हुए खिलते हैं, फलते हैं, फतझड़ में सूखते भी हैं, और फिर उनके शरीर पर नयी पत्तियां आ जाती हैं। यह सब तपस्या है।

तुम रो सकते हो, घबड़ा सकते हो, हिम्मत हार सकते हो, पर इससे बनेगा कुछ नहीं। तुम्हारे रोने पर दूसरे हंसेंगे। तुम्हें कोई मदद करने नहीं आवेगा। तुम्हें स्वयं ही खड़ा होना पड़ेगा, स्वयं फिर से हिम्मत बांधनी होगी। स्वयं तपस्या करनी पड़ेगी। उस तपस्या के समय प्रभु की याद करना। तुम्हें तपस्या करते हुए देखकर प्रसन्न होगा। तपस्या के फलस्वरूप तुम्हारे जीवन में नयी ज्योति दिखायी

पड़ेगी—यह प्रभु की ज्योति है, यह तुम्हारा मार्ग प्रदर्शित करेगी। तुम्हारे जीवन का मार्ग प्रशस्त होता जायेगा। तुम जीवन से निराश हो गए थे, किन्तु अब आशा की झलक आने लगेगी।

काली-काली घटायें जीवन में आती हैं, हमें उदास बनाती हैं, खिन्न कर देती हैं, किन्तु ये घटायें, बादल की टुकड़ियाँ सदा चलती रहती हैं, एक जगह नहीं टिकतीं, खिसक कर ये आगे बढ़ेंगी, बरस जायेंगी या सूर्य की गरमी में भाप बन कर फिर उड़ जावेंगी। फिर जैसे ही घटायें हटीं, नया प्रकाश आवेगा। इस रहस्य को समझ लो। तुम्हारे जीवन के काले बादल, दुःख और संकट के बादल, सदा नहीं रहने को—ये चलते फिरते टुकड़े हैं। आज रो रहे हो, सिसक रहे हो; कल अवश्य तुम मुस्काओगे, तुम्हारे जीवन का नैराश्य समाप्त हो जायेगा। जिस प्रभु पर या अपने प्रारब्ध पर तुम आज कुपित हो रहे हो, जिस प्रभु या प्रारब्ध को तुम कोस रहे हो, वह तुम्हें फिर से प्यारा लगने लगेगा।

घबरा रहा तू व्यर्थ ही नर यह अंधेरा जा रहा है
दो ही क्षणों की देर बस आलोक सम्मुख आ रहा है

हिम्मत न तू अब हार
होता न क्यों तैयार
है शीघ्र ही उद्धार

आयी उषा भागी निशा तू व्यर्थ क्यों घबरा रहा है
दो ही क्षणों की देर बस आलोक सम्मुख आ रहा है।

□□□

अन्य प्रकाशन

महावीरांगना महारानी कैकेयी

लेखक— गजानन्द आर्य

मूल्य १५ रु०

आर्यसमाजोदय

लेखक—गजानन्द आर्य

मूल्य ३ रु०

जीवन सौरभ

सत्यानन्द आर्य

मूल्य १० रु०

यादें

(श्री लालमन जी आर्य स्मृति व संस्मरण ग्रन्थ)

सम्पादक—महेन्द्र आर्य

विचार प्रकाशन

७/७८ पंजाबी बाग नई दिल्ली-२६

फोन : ५०४६०५